ISSN 2582-0885

स्रवंति

मासिक पत्रिका

फरवरी : 2023

मूल्य : ₹ 15/-

స్రవంతి

మాసపత్రిక

ఫిబ్రవరి : 2023

వెల : ₹ 15/-

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा

(Provincial Branch of Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004, फोन - 040-23316865

Email : dbhpsandhra@yahoo.co.in Website : www.dbhpsandhra.com

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र तथा तेलंगाना : गणतंत्र दिवस : 26 जनवरी, 2023

तेलंगाना राज्य की नई मुख्य सचिव ए. शांति कुमारी का अभिनंदन : 16 जनवरी, 2023

'स्वामी विवेकानंद के विचारों में युवा' विषयक व्याख्यान : 4 फरवरी, 2023

स्रवंति

मासिक पत्रिका

फरवरी, 2023

ISSN : 2582-0885

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित

वर्ष 67 अंक 11

संपादक

जी. सेल्वराजन

सचिव (प्रभारी)

ए. जानकी

सह संपादक

डॉ. जी. नीरजा

neerajagurramkonda@gmail.com

मूल्य : ₹ 15/-

वार्षिक शुल्क : ₹ 150/-

dbhpsandhra@yahoo.co.in

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004.
फोन : 040-23316865
website : dbhpsandhra.com

संपादकीय

✱ मानवता सुख की साँसें भरती होगी तब समझूँगा आया बसंत ... 4

मध्यांतर

✱ रुक्माजी राव 'अमर' की कविताएँ 19

स्मरण में है आज जीवन : 9

✱ हीरालाल बाछोतिया : तेरी याद के हमने मोती ... दिलीप सिंह 6

आलेख

✱ स्त्री की बदलती छवियाँ : 'वोल्गा से गंगा' का .... बलविंदर कौर 23

कविता

✱ माँ मुझको जन्म लेने दो अंकुर सिंह 25

✱ रोजगार कहाँ है कमलेश झा 32

मीडिया

✱ 'द कश्मीर फाइल्स' भारत की आँख में .... आलोक पाण्डेय और मुकेश जाल 13

✱ साहित्य और पत्रकारिता अमन कुमार त्यागी 30

परीक्षोपयोगी

✱ वस्तुनिष्ठ प्रश्न : हिंदी साहित्य का इतिहास 36

गतिविधियाँ

'स्रवंति' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय...

मानवता सुख की साँसें भरती होगी तब समझूँगा आया बसंत ...

ऋतुराज बसंत ! आ गए फिर से एक बार ! सब के मन को आह्लादित करने, नई उमंग से भरने। कलियाँ खिलने लगीं, बगीचे महकने लगे। कवि का मन थिरकने लगा और कंठ गाने लगा - द्रुमा सपुष्पाः सलिलं सपद्मः,/ स्त्रियः सकामाः पवनः सुगंधीः।/ सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः,/ सर्व प्रिये चारुतरं वसंते।' (कालिदास, ऋतुसंहार)। बसंत ऋतु सबके मन को आकर्षित करती है। साधारण व्यक्ति भी आम्र मंजरी को देखकर, कोयल की कूक सुनकर बौरा जाता है। ऐसे में कविहृदय का यह कहना स्वाभाविक है कि 'कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में/ क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है/ कहे 'पद्माकर' परागन में पौनहू में/ पानन में पीक में पलासन पगंत है/ द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में/ देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है/ बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में/ बनन में बागन में बगरयो बसंत है।' विद्यापति कहते हैं कि 'आएल रितुपति-राज बसंत/ धाओल अलिकुल माधव-पंथ।/ दिनकर किरन भेल पौगंड/ केसर कुसुम धएल हे दंड/ नृप-आसन नव पीठल पात/ कांचन कुसुम छत्र धरु माथ/ मौलि रसायल मुकुल भय ताल/ समुखहि कोकिल पंचम गाय।'

बसंत के आने का संकेत पहले से ही मिल जाता है - (फैल गया है पर्वत-शिखरों तक बसंत मनमाना,/ पत्ती, कली, फूल, डालों में दीख रहा मस्ताना - माखनलाल चतुर्वेदी)। धरती शस्यश्यामला बन जाती है। कवि की कल्पना उड़ान भरने लगती है। शायद इसीलिए कवियों ने बसंत को अनेक रूपों में चित्रित किया है। किसी-किसी के लिए यह आह्लाद का कारण बनता है तो किसी के लिए विरह को उद्दीप्त करने वाला। रवींद्रनाथ ठाकुर कह उठते हैं कि 'आज द्वार पर आ पहुँचा है जीवन वसंत' तो अज्ञेय सबको चेताते हैं यह कहकर कि 'पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली/ सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली/ नीम के भी बौर में मिठास देख/ हँस उठी है कचनार की कली/ टेसुओं की आरती सजा के/ बन गई वधू वनस्थली/ स्नेह भरे बादलों से/ व्योम छा गया/ जागो जागो/ जागो सखि वसंत आ गया जागो।' ऐसे में जयशंकर प्रसाद पूछते हैं कि 'आता है फिर जाता है।/ जीवन में पुलकित प्रणय सदृश,/ यौवन की पहली कांति अकृश,/ जैसी हो, वह तू पाता है, हे वसंत क्यों तू आता है?' जहाँ प्रसाद प्रश्न कर रहे हैं, वहीं गोपालदास नीरज कहते हैं 'धूप बिछाए फूल-बिछौना,/ बगिया पहने चाँदी-सोना,/ कलियाँ फेंके जादू-टोना,/ महक उठे सब पात,/ हवन की बात न करना !/ आज बसंत की रात,/ गमन की बात न करना !'

बासंती हवा (हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ।/ वही हाँ, वही जो युगों से गगन को/ बिना कष्ट-श्रम के सम्हाले हुए है/ हवा हूँ हवा मैं बसंती हवा हूँ - केदारनाथ अग्रवाल भला किसको पसंद नहीं। इसीलिए कुँअर बेचैन उसका स्वागत करते हैं (ओ वासंती पवन हमारे घर आना !) और भगवतीचरण वर्मा कहते हैं, 'गेंदा फूला जब बागों में/ सरसों फूली जब खेतों में/ तब फूल उठी सहस उमंग/ मेरे मुरझाये प्राणों में।'

नव पल्लव बसंत को नूतन वस्त्र देते हैं। भ्रमर मंगल गान करते हुए इधर से उधर, उधर से इधर घूमते रहते हैं। कोयल वेद मंत्रों का उच्चारण करती हैं तो धतूरा और पलाश झालर बनाते हैं। केसर सिंदूर दान करते हैं तो केवड़े सुगंध छिड़कते हैं। ऐसे वसंत के आगमन पर 'हर्ष का ढिंढ़ोरा/ पीटते-पीटते, हरहराते रहे/ काल के कगार पर खड़े पेड़।' (केदारनाथ अग्रवाल)। त्रिलोचन का कहना है कि 'नव वसंत खिला जब भाग्य सा,/ भुवन में तब जीवन आ गया,/ गगन ने उस को अपनाव से,/ अतुल गौरव से, अपना किया।'

बासंती हवा में मादकता है। यह मन में इच्छाओं को जगाता है। 'इन ढलानों पर वसंत/ आएगा हमारी स्मृति में/ ठंड से मरी हुई इच्छाओं को फिर से जीवित करता/ धीमे-धीमे धुंधवाता खाली कोटरों में/ घाटी की घास फैलती रहेगी रात को/ ढलानों से मुसाफ़िर की तरह/ गुज़रता रहेगा अंधकार' (मंगलेश डबराल)। निराला कहते हैं कि 'सखि, वसंत आया/ भरा हर्ष वन के मन,/ नवोत्कर्ष छाया।/ किसलय-वसना नव-वय-लतिका/ मिली मधुर प्रिय उर-तरु-पतिका/ मधुप-वृंद बंदी-/ पिक-स्वर नभ सरसाया।' जहाँ सभी बसंत के आगमन पर खुश हो रहे हैं वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान भीषण जलियाँवाला बाग कांड को याद करते हुए करुणा से भरकर कह उठती हैं- 'परिमल-हीन पराग दाग सा बना पड़ा है,/ हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है।/ ओ, प्रिय ऋतुराज! किंतु धीरे से आना,/ यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना।/ वायु चले, पर मंद चाल से उसे चलाना,/ दुःख की आहें संग उड़ा कर मत ले जाना' तो ऋषभदेव शर्मा आतंक की फसल हरियाती देख आशंकित होकर कहते हैं कि 'जीवभक्षी पौधा हूँ न मैं।/ वसंत, मुझ पर मत आना।' वे बसंत से यह भी कहते हैं कि आतंक के बाग में यदि आना ही है तो ऐसे आना 'जैसे 'सदोम' और 'अमोरा' पर आए थे-/ गंधक और तेज़ाब की बारिश बनकर,/ परमाणु और न्यूट्रान बम बनकर' दुराचारों को समाप्त करने के लिए।

शिवमंगल सिंह सुमन कहते हैं - जब सजी बसंती बाने में/ बहनें जौहर गाती होंगी/ क़ातिल की तोपें उधर/ इधर नवयुवकों की छाती होगी/ तब समझूँगा आया वसंत।/ जब पतझड़ पत्तों-सी विनष्ट/ बलिदानों की टोली होगी/ जब नव विकसित कोंपल कर में/ कुंकुम होगा, रोली होगी/ तब समझूँगा आया वसंत।/ युग-युग से पीड़ित मानवता/ सुख की साँसें भरती होगी/ जब अपने होंगे वन उपवन/ जब अपनी यह धरती होगी/ तब समझूँगा आया वसंत।/ जब विश्व-प्रेम मतवालों के/ ख़ूँ से पथ पर लाली होगी/ जब रक्त बिंदुओं से सिंचित/ उपवन में हरियाली होगी/ तब समझूँगा आया वसंत।/ जब सब बंधन कट जाएँगे/ परवशता की होली होगी/ अनुराग अबीर बिखेर रही/ माँ बहनों की झोली होगी/ तब समझूँगा आया वसंत।'

बसंत पंचमी और निराला जयंती की शुभकामनाओं के साथ...

(सह संपादक)

हीरालाल बाछोतिया
तेरी याद के हमने मोती पिरोये

- दिलीप सिंह

सन् 2017 में प्रिय बाछोतिया पर लिखा था, उनके अभिनंदन ग्रंथ जैसी ही एक पुस्तक 'भाषा विमर्श' के लिए। तब लिखते समय कैसा उछाह था। आज संजोये बैठा हूँ उनकी यादों के मोती। चारों तरफ सन्नाटा है। मन जैसे डूबा जा रहा है। इस नश्वर संसार की लीला भी अजीब है। कभी धूप, कभी छाया। बाछोतिया जी मेरे बड़े भाई भी थे, दोस्त भी, गुरु और बुजुर्ग भी। और भी न जाने क्या-क्या। उनकी याद आती है तो बवंडर उठने लगते हैं। उथल-पुथल मच जाती है। अपना ही अस्तित्व समेटे नहीं सिमटता। जैसे भीतर का सहेजा हुआ सब बिखर रहा हो। वे मेरा संबल थे। मेरा आत्मबल थे। मेरे लिए वे प्रेरणा के प्रकाशमान सूर्य थे। उनकी यादें बस कसक भर नहीं देतीं, सालती हैं, मन-मस्तिष्क को मथ कर छोड़ देती हैं। थिर होने में बहुत समय लगता है।

पहली भेंट उनसे 1976 में हुई थी। 1974-1975 के भाषाविज्ञान ग्रीष्म शिविरों में एम.जी. चतुर्वेदी को मैं अपना बहुत आत्मीय पाने लगा था। वे एनसीईआरटी में रीडर थे। इत्तफाक हुआ कि 'लीव वैकेंसी' पर मुझे केंद्रीय हिंदी संस्थान में काम मिल गया था। अरविंद आश्रम से सटे उसी के भवन में केंद्रीय हिंदी संस्थान स्थित था, ठीक एनसीईआरटी के सामने। सड़क पार करके। चतुर्वेदी जी से मिलने की ललक उठती तो चला जाता। वहीं डॉ. हीरालाल बाछोतिया से भेंट हुई। परिचय हुआ। वे प्रवक्ता थे। बहुत युवा तो नहीं थे, 40-45 के रहे होंगे। लंबे और छरहरे। काले बाल पीछे की ओर थोड़ा मुड़े हुए। पतली सी मूँछ और काले फ्रेम का चश्मा। जाड़ों के दिन थे, वे सूट-टाई डटाए हुए थे। वे बहुत प्रसन्नवदन मिले। चतुर्वेदी जी ने बताया कि डॉ. बाछोतिया मध्य प्रदेश से आए हैं। वहाँ बैतूल के एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। मैं अक्सर कभी लंच के समय में, कभी चार-पाँच बजे चतुर्वेदी जी से मिलने पहुँच जाता। बाछोतिया जी से भी बातचीत होने लगी। धीरे-धीरे यह राज़ भी खुला कि सृजनात्मक साहित्य लेखन में उनकी गहरी पैठ है।

फिर मैं फ्रांस चला गया। 1979 के आखीर में हैदराबाद पहुँचा। फिर केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और फिर हैदराबाद। गंगा में पानी बहता रहा। दिल्ली आया था। सर्वोदय एनक्लेव (केंद्रीय हिंदी संस्थान) गया तो डॉ. बाछोतिया दिख गए। वहाँ से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में डिप्लोमा कर रहे थे। इतने वर्षों का लेखा-जोखा हम दोनों ने एक-दूसरे से लिया। भाषाविज्ञान में उनकी गहरी रुचि थी। वे साहित्य में आकंठ डूबे हुए थे, पर भाषाविज्ञान में उनकी गहरी आसक्ति थी। संभवतः शैलीविज्ञान का भी कोई पाठ्यक्रम उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से किया था। एक दिन अकस्मात वे मुझे प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के घर पर मिल गए। श्रीवास्तव नहीं जानते थे कि हम दोनों पहले कई बार मिल चुके हैं। परिचय देने लगे तो

हमने अपने पूर्व परिचित होने का रहस्य उन पर खोला।

इसी के कुछ ही महीने बाद की बात है। उस्मानिया विश्वविद्यालय में एनसीईआरटी की कार्यशाला थी। बाछोतिया जी संयोजक थे। वे दूसरी और तीसरी भाषा हिंदी का काम देख रहे थे। मुझे पत्र मिल चुका था। मैं गया। हम दोनों ने खूब काम किया। बाछोतिया जी पर मेरा सिक्का जम गया। फिर तो मिलने-जुलने और साथ काम करने का जो सिलसिला जारी हुआ, वह बरसों बरस अनवरत चलता चला गया। हम दोनों एक-दूसरे के पूरक बन चुके थे। अभिन्न। वे बहुत 'हार्ड टास्कमास्टर' थे। ढीले-ढाले लोगों को डाँट भी देते थे। कई लोग पीठ पीछे उन्हें 'हेडमास्टर साहब' कहते थे। पर उनको सभी चाहते थे। उनकी लगन, उनका पैशन, काम करने की उनकी व्यवस्थित पद्धति किसी को भी उनका मुरीद बना देते थे। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है या कहिए उन्होंने मुझे बहुत कुछ सिखाया है। उन्होंने अन्य भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए सामग्री निर्माण की व्यावहारिक युक्तियों से मेरा प्रथम परिचय कराया। उनमें एक बात बहुत अच्छी थी। अपनी प्रत्येक कार्यशाला के प्रारंभ में एक लेक्चर देते थे कि कार्यशाला का लक्ष्य क्या है, उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कौन-कौन सी प्रविधियाँ अपनाई जानी हैं और किस क्रम से पाठों का संयोजन करना है, आदि। लेक्चर देते समय वे श्यामपट का भी 'सहारा' लेते थे। अच्छे और कुशल अध्यापक थे वे। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे मेरे आदरणीय बनते चले गए और अंत तक वैसे ही बने रहे।

इतनी-इतनी यादें हैं उनकी कि उनकी यादों की नदी उफनाने लगती है तो थिराती ही नहीं। दिल्ली, त्रिवेंद्रम, हैदराबाद, पोर्ट ब्लेयर, चेन्नई में हमने एनसीईआरटी के भिन्न पाठ्यक्रमों पर काम किया। कई-कई दिन का साथ रहा। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, राजभाषा विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान और इग्नू के लिए दिल्ली, अल्मोड़ा, शिमला, मैसूर में हम साथ रहे। फिर मैं 2005 में चेन्नई आ गया। वे अवकाश प्राप्त कर चुके थे। पर खूब सक्रिय थे। मैं कुलसचिव था। पहली कार्यशाला बी.एड. के पाठ्यक्रमों को अद्यतन करके प्रश्न बैंक बनाने को लेकर थी। डॉ. बाछोतिया के साथ मुकुंद द्विवेदी (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पुत्र) भी आए थे। मुकुंद जी दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक थे। वे हिंदी अकादमी, दिल्ली के उपाध्यक्ष भी थे। दोनों ने रात-दिन जुटकर, बी.एड. कॉलेज के 18 प्राचार्यों के साथ बैठकर एक ठोस ढाँचा तैयार कर दिया था।

फिर मैंने चेन्नई में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की स्थापना की तो हिंदी माध्यम बी.ए., एम.ए., एम.फिल. की ढेरों सामग्री बननी थी। सैकड़ों इकाइयाँ लिखी जानी थीं। मेरे संकटमोचक तो बाछोतिया जी ही थे। उनकी देख-रेख में सारे पाठ्यक्रम बनाए गए। हर प्रश्न-पत्र की इकाइयाँ तय की गईं। एक टीम थी, जिसके अगुवा डॉ. बाछोतिया थे। बी.एड. की भी किताबें बननी थीं, शिक्षा स्नातक की भी। इस तरह 'वॉर फुटेज' पर काम करना मैंने उन्हीं से सीखा था। वे थकते ही नहीं थे। इस तरह के काम करना और करते जाना उनकी कमजोरी थी।

ज़ोर-शोर से हम जुट गए। चेन्नई, हैदराबाद, धारवाड़, एर्णाकुलम, त्रिवेंद्रम, त्रिची, काकीनाडा, ऊटी में कई-कई दिन की कार्यशालाएँ की गईं। व्यवस्था और प्रबंधन में वे इतने माहिर थे कि हर दिन के कामकाज का एक टाइम-टेबल बना देते थे। मैं निरंतर कई दिनों तक नहीं रह पाता था। ऐसे में बाछोतिया जी, एम. वेंकटेश्वर, रामजन्म शर्मा और सत्यकाम मोर्चा संभालते। हम सब उन दिनों भूत बन गए थे। ये काम सबके अपने हो गए थे। सबके लिए चुनौती बन चुके थे। बाछोतिया जी का हस्तलेख बहुत सुंदर था। सधा हुआ। अक्षरों को चुन-चुन कर लिखते थे। लगातार इकाइयाँ लिखते थे। उन्हें देखकर और सब में भी उत्साह की लहर दौड़ जाती थी। उनका डाँटना-डपटना, कड़ाई करना यहाँ भी चलता था। कहना यह है कि मैं उन्हें इस तरह के काम सौंप के निश्चिंत हो जाता था। काम के प्रति ईमानदारी उनके रक्त में बहती थी। ऐसा कर्मठ कोई मिलना अब दुर्लभ है। वे कर्मयोगी थे। मेरे जैसे न जाने कितनों को उन्होंने कर्मयोग का पाठ पढ़ाया है।

बाछोतिया जी का प्रिय परिधान 'सफारी सूट था। कभी-कभार पैंट-कमीज भी पहन लेते थे। टिप-टॉप रहते थे - नख से शिख तक। चमकता हुआ जूता, क्रीज़दार पैंट, सजे बाल, सजीला चश्मा...। एक बार हैदराबाद की एक गोष्ठी में आए थे। क्रीम कलर की पैंट और बैंगनी रंग की एकदम नई कमीज पैंट में खोंसे हुए मय बेल्ट कमरे से बाहर निकले। वे साधारणतः ऐसे गाढ़े रंग के कपड़े नहीं पहनते थे। मैंने जिज्ञासा की तो बोले, संजय (उनका छोटा बेटा) ले आया था। उस दिन वे खूब जंच रहे थे। उस कमीज में उनके कई चित्र मेरे पास हैं। वैसे तो कई और भी हैं- सभी चित्रों में सजीले बाछोतिया जी। कई चित्रों में एकदम मेरी बगल में बैठे हुए। कभी अपना एल्बम उठाता हूँ तो उनकी अनगिनत छवियों में खो जाता हूँ। तस्वीरों में कैद वे क्षण आँखें नम कर देते हैं।

एक बार हम दोनों ऊटी में थे। वहाँ 'सभा' का प्रचारक महाविद्यालय है। सुंदर भवन है। हरा-भरा प्रांगण है- शहर के बीचोंबीच। भवन के एक निचले कमरे में हम दोनों ठहरा दिए गए। बाकी लोग पहली मंजिल के कमरों में थे। हमारे बगल में ही मेस था जिसके कुक सुबम्मा और सुकेश बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाते थे और प्रेम से खिलाते थे। हम खाना खाकर कमरे में आए तो बादलों को न जाने क्या हुआ कि एकदम फट पड़े। हीटर जल रहा था। पर तेज हवा और बारिश ने कमरे को 'आइसबॉक्स' बना दिया था। मैं दो कंबल लपेटकर सोने की कोशिश करने लगा। बाछोतिया जी भी लेट चुके थे कि अचानक वे ज़ोर से बोले, अरे दिलीप जी, सारे कागज़, किताबें, फाइलें तो ऊपर कॉन्फ्रेंस रूम में पड़ी हैं, कहीं भीग न जाएँ। ऊटी भवन की छत खपरैल की थी, मुझे भी चिंता हुई। कुछ लोगों को ऊपर भेजा गया। कहीं-कहीं पानी टपक तो रहा था पर कागज-पत्तर सुरक्षित थे। मैं तो चैन से सोने की तैयारी में था, पर बाछोतिया जी ने चिंता की। उनकी यही बातें मुझे उनका दीवाना बनाए हुए थीं।

सुबह-सवेरे वे जल्दी उठ जाते थे। मुझसे भी टहलने चलने का इसरार करने लगते। मैं रोज़ ना-नुकुर करता पर आख़ीर में जीत उन्हीं की होती। उटी का सौंदर्य उन्हें मोहता था। एक चीज़ और मोहती थी

उन्हें - चौराहे के पास के दुकान की 'फ़िल्टर कॉफी'। हम त्रिची में थे तो चाय-कॉफी वाला 'सभा' के गेट के उस पार ही था। बाछोतिया जी की चाँदी हो गई। चायवाला इन्हें देखते ही हँसते हुए पूछता - 'फिल्तर कॉपी', 'फिल्टर कॉपी'। फ़िल्टर कॉफी उनकी कमजोरी थी। एक बार उसकी तलाश में हमने पूरे टी. नगर का चक्कर लगा डाला, पर सफलता नहीं मिली। वे बहुत निराश हुए। दिल्ली में हम जब कभी कनॉट प्लेस के पास से गुज़रते तो वे गाड़ी घुमवा लेते। 'स्टेट शोरूम' के पीछे या मानसिंह प्लेस वाले 'इंडियन कॉफी हाउस' में कॉफी पिलाते। 'सभा' के अध्यक्ष थे - श्री एम.वी. राजशेखरन जी। योजना मंत्रालय के केंद्रीय राज्य मंत्री थे। बड़े ही संत प्रकृति के व्यक्ति थे। वे 'योजना आयोग भवन' में बैठते थे, दूसरी मंजिल पर मुझे उनसे मिलने जाना होता था। योजना भवन की पहली मंजिल पर 'इंडियन कॉफी हाउस' का दफ्तर था। वहाँ एक कॉफी स्टॉल भी था। कई बार बाछोतिया जी मेरे साथ राजशेखरन जी से मिलने गए थे।

ये कवि और लेखक हैं जानकर राजशेखरन जी बहुत खुश हुए थे। ये भी खुश होते थे कि वहाँ इन्हें दो बार कॉफी पीने को मिलती थी। एक बार पी.ए. के पास इंतजार करते समय और दूसरी बार राजशेखरन जी के साथ। वापस आकर वे योगा करते। व्यायाम करते। खाट पर लेट कर हाथ पैर इधर-उधर मोड़ते। चित लेटकर दोनों पैर एकदम सीधा तान देते। मुझसे भी वे ये सब करने को कहा करते थे, पर मैं टाल जाता। एक दिन मैंने उनसे कहा कि देर-देर तक लिखने-पढ़ने से गर्दन और कंधे में दर्द रहता है। उन्होंने तुरंत मुझे एक 'एक्सरसाइज़' बताई कि - गर्दन को पहले बायें जहाँ तक मोड़ सकें मोड़ कर रुक जाइए फिर दस तक गिनती गिन कर गर्दन सीधी करके पाँच तक गिन कर गर्दन को उसी तरह दाहिने मोड़ कर दस तक गिनिए, गर्दन सीधी करके पाँच तक गिनिए और यह क्रम 15-20 मिनट तक जारी रखिए, 20-25 बार पूरी प्रक्रिया दुहराइए। मैं आज भी यह अभ्यास करता हूँ। बहुत लाभ मिलता है। मेरे दिल में डॉ. बाछोतिया यूँ ही नहीं बस गए हैं।

ऊटी की वर्कशॉप दूसरे दिन खत्म होने वाली थी। बी.एड. की किताबें बन रही थीं। बाछोतिया जी पके हुए शिक्षाशास्त्री थे। शाम को कहने लगे, दिलीप जी, आज थोड़ा 'रस-रंजन' होना चाहिए। रस-रंजन 'हार्ड ड्रिंक' लेने को कहते थे। हम दोनों पीना पसंद करते थे, वह भी ऊटी की ठंड में पास में ही दुकान थी, जाकर ले आए। सुबम्मा ने बाकी व्यवस्था कर दी। पीते-पीते उन्होंने अगली कार्यशाला की योजना कागज पर उतार दी। कार्यशाला धारवाड़ में हुई। कई और विद्वान (शिक्षाविद) भी बुलाए गए थे। तीसरी कार्यशाला एर्णाकुलम में हुई। कच्ची पुस्तकें तैयार हो गईं। बाछोतिया जी संपादक भी उत्तम श्रेणी के थे। सामग्री को मांज देते थे। फुलस्टॉप, कॉमा भी उनकी निगाह से बच नहीं पाते थे। दो-तीन माह बाद वे और मुकुंद द्विवेदी आए और पुस्तकों की प्रेस-कॉपी बनाकर मुझे दे दी। हर नज़र से एकदम परफेक्ट किताबें।

बाछोतिया जी यात्रा-प्रेमी थे। बहुत बारीक यात्री। 'कादंबिनी में उनके यात्रा-वृत्तांत छपते थे। दो किताबें भी आईं - 'दर्शनीय भारत : अतुल्य भारत' तथा 'भारत से बाहर भारत'। अपने देश-विदेश की

यात्राओं को उन्होंने इन पुस्तकों में स्वर दिया है। एक बार धारवाड़ आए तो गोवा चलने की इच्छा जाहिर की। 'सभा' के कर्ताधर्ता नीरलकट्टी जी दिलदार आदमी थे। उन्होंने अपनी कार ड्राइवर समेत हमें दे दी। गोवा में भी 'सभा' का एक छोटा-सा केंद्र था। वहाँ के केयरटेकर श्रीनिवास हेगड़े ने एक होटल में कमरा बुक करवा दिया था। गाड़ी हाथ में थी, हम खूब घूमे। पूरे दो दिन हमने गोवा में बिताए। ऐसे ही एक बार आए तो हम 'छुकछुक' ट्रेन से गोवा गए-आए। यात्रा के बाद कमरे में आकर वे अपनी डायरी में कुछ नोट्स लेते थे। कितनी यात्राएँ की हैं मैंने उनके साथ, कोई हिसाब नहीं। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की एक बैठक अल्मोड़ा में थी। शायद 'प्रवीण' पाठ्यक्रम के संशोधन पर। मुकुंद जी भी साथ थे। एक दिन हम बाई रोड पंत जी का घर देखने भी गए थे। एक कमरे में उनके कुछ चित्र लगे थे। दीवार में लगी शीशे की आलमारी में कुछ पुस्तकें रखी थीं। एक बक्सा भी था। कुछ लोग आ पहुँचे थे, तरह-तरह की कहानियाँ सुनाने। वहाँ की प्राकृतिक सुषमा और सुकुमार कवि के पैतृक घर की दुर्दशा देखकर बाछोतिया जी खिन्न थे। वे विदेश में देख आए थे कि वहाँ लेखकों के आवास को कितने सुरुचिपूर्ण ढंग से संरक्षित किया गया है। सैकड़ों लोग रोज वहाँ पहुँचते हैं। और यहाँ सन्नाटा पसरा हुआ था - न चिड़िया न चिड़िया का पूत।

मुझे दिल्ली अक्सर जाना पड़ता था। एनसीईआरटी कैंपस में स्थित 'न्यूपा हॉस्टल' में ठहरता। बाछोतिया जी नाश्ता करके पहुँच जाते। पास ही में उनका निवास था 'साकेत' में। मेरे साथ रहते। उन्हें दिल्ली के मार्गों का अच्छा ज्ञान था। कभी-कभी तो टैक्सी वाले को भी अचरज में डाल देते थे। इस लंबे सान्निध्य में मैंने पाया कि वे बहुत 'प्रैक्टिकल' थे। वे सब्जी-फल वालों से मोलभाव कर लेते थे, दुकानदार के सामने ही चीजों की 'एक्सपायरी डेट' देखने लगते थे, कोई खाने की चीज लेने के पहले चख लेते थे... अमूमन हम तथाकथित पढ़े-लिखे लोग यह सब करने में संकोच कर जाते हैं। उन्हें फिजूलखर्ची करते मैंने कभी नहीं पाया। वे पैसे का मोल समझते थे। बताते थे कि उनका जीवन आर्थिक संघर्षों में बीता है। उन्हें पुरखों से कोई जागीर नहीं मिली थी। कभी हम लोगों से मिलने सीएचआई जाते तो बताते कि इसी 'सर्वोदय एनक्लेव' के एक कमरे के सेट में मैं बरसों पूरे परिवार के साथ रहा हूँ। दिल्ली में उनकी कुछ सेट दुकानें थीं जो कम दाम में अच्छा सामान देती थीं। मुझे मिठाई-नमकीन लेनी होती तो वे मुझे युसुफ सराय की एक सामान्य सी दुकान में ले जाते। दवा वे ग्रीनपार्क की एक खास दुकान से लेते थे जो उन्हें कुछ प्रतिशत की छूट देता था। साउथ इंडियन दोसा आदि खाना हो तो वे मुझे 'साउदी रेस्तरां' में ले जाते, ये लोग कर्नाटक के थे - दाम भी वाजिब और चीजें भी 'ओरिजिनल'। 'नॉन-वेज' के लिए उनका पसंदीदा था ग्रीनपार्क पर 'कोजी। बहुत अच्छा पर 'रीज़नेबल'। पैसे का महत्व मैंने उन्हीं से सीखा। सिर्फ 'टीमटॉम' दिखाने के लिए पैसे लुटाने को वे जाहिलपना कहते थे।

मुझे चाट बहुत पसंद है। वे मुझे बंगाली मार्केट के 'बंगाल स्वीट हाउस' में ले जाते। चाट उन्होंने मुझे यूपीएससी की बगलवाली गली में भी खिलाई थी। भीड़ लगी रहती थी- मोटर गाड़ियों की। टोकन लेकर

सामान मिलता था। पटरी पर ही दुकान थी, पटरी पर ही खड़े होकर खाना पड़ता था। उन्हें लस्सी बहुत पसंद थी। हम दोनों 'नमकीन लस्सी' पीते। उनकी कॉलोनी के छोटे-से बाजार में भी सब चीजें मिल जाती थीं। एक बार मुझे वहाँ जरूर ले जाते। कहते - रुमाल, मोजा, तौलिया, बनियान आदि यहीं से ले जाया कीजिए।

एक बार मैंने बात-बात में उनसे कह दिया कि मद्रास (चेन्नई) में सब्जी का बड़ा कष्ट है - नेनुआ, परवल, मटर, करेला, गोल बैंगन तो मिलता ही नहीं और भिंडी, टिंडा भी कड़े-कड़े मिलते हैं। जिस दिन मुझे निकलना था उसके पहले वाली शाम को कामकाज से लौटते समय वे अपनी कॉलोनी की परिचित दुकान पर गए। थोड़ी-थोड़ी सभी सब्जियाँ उन्होंने दिलवा दीं। मैं चिंता में था कि ये जाएँगी कैसे? वे बेफिक्र थे। मेरे साथ ही कमरे में आए और मेरी अटैची के चारों ओर जगह बना बना कर सब्जियाँ सेट कर दीं। हम दोनों ने खींचतान कर किसी तरह अटैची बंद की। आगे तो यह सिलसिला ही बन गया। गर्मियों में गया था तो दिल्ली में दशहरी और लंगड़ा आमों की बहार थी। मैंने कहा कि एयरपोर्ट पर ढोना पड़ेगा, छोड़िए। कहने लगे दो-दो किलो ले जाइए; फिर हँसकर बोले - चार किलो तो आप ढो लेंगे। आम ले लिए गए। वे अपने घर से कपड़े का एक मज़बूत थैला ले आए। मैंने 'हैंड बैगेज बेल्ट' पर अपने हैंड बैग के साथ आमों का थैला रखा तो सिक्योरिटी वाले मुस्कुरा रहे थे। प्लेन में परिचारिकाओं के सुंदर मुख पर भी स्मित की रेखाएँ थीं। इन्हें क्या मालूम कि इस थैले में बाछोतिया जी का अमित स्नेहा धरा है।

बाछोतिया जी मुझे जिंदगी के करीब लाने वाले परम सखा थे। उनसे मैंने दुनियादारी के ढेरों-ढेर सबक सीखे हैं। झोली भर-भर के वे अपना प्यार मुझ पर लुटाते थे। कोई दुराव नहीं। बस, प्रेम ही प्रेम। हम एक-दूसरे से जिदिया भी जाते थे, नाराज भी हो जाते थे, झगड़ भी पड़ते थे, पर प्रेम की यह अविरल धारा कभी सूखी नहीं। मैं अमरकंटक आ गया, यह सूचना दी तो खिल उठे। मैं उनकी जन्मभूमि आ पहुँचा था। मध्य प्रदेश के वनांचलों में मुझे भाषा सर्वेक्षण का वृहत् कार्य करना था। मैंने उनसे कहा भी कि आपकी मदद से इस कार्य को गति मिलेगी। आप यहाँ आइए, एक बार फिर हम दोनों मिलकर एक और राष्ट्रीय महत्व का कार्य करेंगे। मैं परियोजना के कार्यक्रम बनाने में जुट गया। कई नियुक्तियाँ कीं, भाषाएँ चुनीं, गाँवों में जाकर 'पायलट सर्वे' किया। अब एक 'ब्लूप्रिंट तैयार हो गया था। बाछोतिया जी की जरूरत आन पड़ी थी कि उन्हें कैंसर हो गया, पूरा बायाँ जबड़ा काट कर निकाल देना पड़ा। उनके जयेष्ठ पुत्र चेतन हाल देते थे। डॉ. बाछोतिया भी थोड़ा-बहुत बतियाते थे। उनका मन उछलता था मेरे साथ काम करने को, पर क्या करते लाचार थे।

यूजीसी में मेरी एक बैठक थी। बैठक के बाद मुझे उनके घर के सामने से होते हुए ही 'इग्नू' जाना था। चलने के बाद मैं अलग-अलग पड़ावों से फोन करता रहा। उनके 'ब्लॉक' के गेट के निकट पहुँचा तो गाड़ी से ही दिखाई पड़ा कि वे अपने पोते अक्षत के साथ खड़े हैं। उनका फ्लैट तीसरी मंजिल पर है और मेरे घुटनों में तकलीफ थी। मैंने घर न आ पाने की उनसे क्षमा माँगी थी, वे समझ गए थे। वे कुछ अस्फुट

बोलते रहे। बायें जबड़े की ओर एक मोटा आवरण बंधा था। शरीर आधा रह गया था। मेरी रुलाई फूट पड़ी। उन्होंने मेरा हाथ कस कर पकड़ लिया। मैं और भी विगलित हो गया जब उन्होंने अक्षत को कुछ इशारा किया। उसने कंधे पर लटके झोले से ठंडे पानी की बोतल और क्रीम बिस्कुट का पैकेट निकाला। डॉ. साहब ने मुझे इशारा किया कि - लीजिए। मैंने किसी तरह एक बिस्कुट और पानी हलक के नीचे उतारा। वे लगातार स्नेह भरी नजरों से मुझे देखते रहे। मैं बोला- चलूँ डॉक्टर साहब, नहीं तो देर हो जाएगी। उनके चेहरे पर आँसू की दो धाराएँ समानांतर बह रही थीं, वे अपने को ज़ब्त करने में लगे थे। मैंने उनके कंधे को जोर से दबाया और लगभग भागते हुए जाकर कार में बैठ गया। कार के शीशे में वे वहीं खड़े दिखाई देते रहे। यही उनकी आखिरी छवि है। मैं ईश्वर से अश्रुपूरित प्रार्थना करता रहता हूँ कि वे इस पूरे दृश्य को मेरे हृदय-पटल से पोंछ डालें। पर न जाने क्यों वे मेरी प्रार्थना नहीं सुनते।

बाछोतिया जी कला प्रेमी थे। मैंने उनके साथ दिल्ली में कई नाटक देखे हैं - बूंद और समुद्र, एक रात का रिपोर्टर, अमीर खुसरो ...। 'आल्हा' संगीत सुना था। सुरेन्द्र शर्मा का एकल कविता पाठ सुना था। वे संगीत प्रेमी भी थे। कभी 'मूड' में उन्हें कोई पुराना फिल्मी गीत सुनाता तो वे खो जाते थे। 'ग्रीष्म शिविर' के दिनों से ही वे मेरी गायन कला के कायल थे। दिल्ली की सभी साहित्यिक संस्थाओं से उनका संपर्क था। साहित्य अकादमी, हिंदी अकादमी दिल्ली के कई कार्यक्रमों में मैं उनके साथ गया हूँ। लोगों से भेंट हो जाती। दिल्ली का समस्त हिंदी जगत उनका आदर करता था। उन्हें जानता मानता था। और वे मुझे मानते थे। वे अपनी किताबें मुझे भेंट करते थे। एक पुस्तक 'राजभाषा हिंदी और उसका विकास' की तो उन्होंने ज़िद करके मुझसे भूमिका भी लिखवा ली। अपने खंड-काव्य 'विद्रोहिणी शबरी' के विमोचन के लिए वे मुझे दिल्ली बुला रहे थे। अपनी व्यस्तताओं के कारण मैं जा नहीं पा रहा था। मेरे बिना वे कार्यक्रम करने को तैयार ही नहीं थे।

वे कार्यक्रम टालते रहे। अंततः मैं गया तब विमोचन समारोह उन्होंने किया। इतना मान देनेवाला अब भला कौन और कहाँ मिलेगा? कहाँ से ढूँढ़ कर लाऊँ मैं डॉ. बाछोतिया को? उनके संपूर्ण 'विदुर' खंडकाव्य का दिल्ली में मैंने उन्हीं के मुख से पाठ सुना है, भावविह्वल होकर वे कविता को पढ़ते थे। उनकी 'भाषाशिक्षण' पुस्तक मुझे विशेष प्रिय है। उनकी सारी किताबें मेरे पास हैं। मेरी 'स्टडी' के इस कोने, उस कोने से झाँकती रहती हैं। लगता है बाछोतिया जी ही झाँक रहे हैं। सारी स्मृतियाँ सजग होने लग जाती हैं। कहने को चले गए हों बाछोतिया जी, पर वे पल-पल मेरे पास हैं, मेरे साथ हैं। कभी हँसाते हैं, कभी रुलाते हैं।

निदेशक, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातिय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक - 484886 (मध्य प्रदेश)

मीडिया

'द कश्मीर फाइल्स' भारत की आँख में अंनत काल तक गड़ने वाला पत्थर

- आलोक पाण्डेय और मुकेश जाल

एक सवाल कई बार उठाया जाता है कि इतिहास जानना जरूरी क्यों है? जो हो गया सो हो गया, अब गड़े मुर्दे क्यों उखाड़ना? इतिहास जानना गड़े हुए मुर्दे उखाड़ना नहीं बल्कि दबे हुए खज़ाने खोदना है। खज़ाने अनुभव के। हमें कई बार ऐसा लगता है कि बात बहुत पुरानी है अब प्रासंगिक नहीं रही, लेकिन यही हमारी मूर्खता है। जो चुनौतियाँ कल थीं, वही आज भी हैं, बस थोड़ा सा रंग रूप बदला है। इतिहास को जाने बगैर भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। इतिहास के पन्नों में ऐसी कई दर्दनाक घटनाएँ दर्ज हैं, जिसने इंसानियत और समाज दोनों को न सिर्फ़ शर्मसार किया है, बल्कि ऐसे जख्म भी दिए हैं जिसके निशान आज तक मिलते हैं। कश्मीर से हिन्दू पंडितों का पलायन उनकी दुर्दशा ऐसी ही एक सच्ची त्रासदी और कभी न भरने वाला जख्म है।

'द कश्मीर फाइल्स' में विवेक अग्निहोत्री ने 1990 के दशक में कश्मीरी पंडितों के साथ हुए उस जेनोसाइड और विस्थापन को दर्शाया है, जब आतंकियों ने उन्हें अपने ही घर से भागने पर मजबूर कर दिया था। इस फिल्म के माध्यम से विवेक अग्निहोत्री 30 साल पुराने कश्मीरी पंडितों के उस दुःख को, उस दर्द को हमारे नजरों के सामने लाने का प्रयास करते हैं जिसको आज तक हमसे छुपाया गया था। फिल्म 'द कश्मीर फाइल्स' एक सच्ची घटना पर आधारित है। इस फिल्म को विवेक अग्निहोत्री ने लिखा तथा निर्देशित भी किया है। इस फिल्म का प्रदर्शन 11 मार्च, 2022 को हुआ था, लागत मूल्य 15 करोड़। इस फ़िल्म के मुख्य पात्र हैं - अनुपम खेर- पुष्कर नाथ पंडित, दर्शन कुमार- कृष्णा पंडित, मिथुन चक्रवर्ती- आई.ए.एस ब्रह्म दत्त, पल्लवी जोशी- प्रोफेसर राधिका मेनन, इत्यादि।

यह फिल्म 1990 से शुरू होती है और मौजूदा साल तक चलती है। दिल्ली में पढ़ रहा कृष्णा पंडित अपने दादा पुष्कर नाथ पंडित की आखिरी इच्छा को पूरी करने के लिए कश्मीर जाता है। कश्मीर में उसकी मुलाकात दादाजी के चार दोस्तों से होती है और बातों ही बातों में उनके बीच कश्मीरी पंडितों के पलायन और नरसंहार की चर्चा छिड़ जाती है। उसके बाद कहानी 1990 में पहुँच जाती है, जहाँ जे.के.एल.एफ. द्वारा सतीश टिक्कू की हत्या, कश्मीरी पंडितों को गलियों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारना, उनके घरों को जलाना साथ ही गलियों में घूम-घूम कर रालिव, गलिव और चलिव के गूँज रहे नारों वाले दृश्य भी दिखाए गए हैं जिसका अर्थ होता है या तो धर्म बदलो या भाग जाओ या मर जाओ। बीके गूँज को चावल के ड्रम में गोलियों से मारना, उसकी पत्नी को अपने पति के खून से सने हुए चावल खिलाना, एक महिला को आरी से दो भागों में चीर देना, 24 कश्मीरी पंडितों का नरसंहार यह सारे दृश्य इस फिल्म में दिखाए गए हैं। यह घटनाएँ वास्तविक हैं क्योंकि इनके प्रमाण मौजूद हैं। यह अलग बात है और विवेक पर आरोप भी की उन्होंने सत्य को पूर्णता में नहीं दिखाया है।

पुष्कर नाथ पंडित अपने परिवार के साथ कश्मीर में रहते हैं। आतंकवादियों ने जब कश्मीरी पंडितों

को भगाना, मारना, उन पर अत्याचार करना प्रारंभ किया तब अपने परिवार पर खतरा मंडराने के कारण वे अपने दोस्तों से (जो कि सरकारी अधिकारी थे) सुरक्षा की माँग करते हैं, लेकिन तत्कालीन राज्य के शासन-प्रशासन के सामने सभी असहाय जान पड़ते हैं। ये सभी चार अधिकारी जो कि अपने अपने किरदार में हैं दरअसल प्रतीक हैं उस समय की मौन रही सरकार के। एक तरफ कृष्णा पंडित को प्रोफेसर राधिका मेनन के द्वारा ब्रेनवाश करना और दूसरी तरफ कृष्णा पंडित का कश्मीर जाकर कश्मीर की सच्चाई से रूबरू होना और अपने माता पिता के मरने की सच्चाई को जानना और कश्मीरी पंडितों के इतिहास और सच को जानने के बाद, वापस दिल्ली लौट कर चले आ रहे झूठ का सबके सामने पर्दाफाश करना, यही फिल्म की कहानी है। और एक बात; कश्मीरी हिंदुओं पर अचानक एक दिन आतंकियों ने अत्याचार करके नरसंहार नहीं किया, अचानक उन्हें भागने पर मजबूर नहीं किया, कश्मीरी हिंदुओं पर तो पिछले 600 सालों से अत्याचार किया जा रहा था। 1385 से ही धर्म परिवर्तन करने और मंदिरों को तोड़े जाने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। यह धीरे-धीरे बढ़ता चला गया और अंत में परिणाम हमारी आँखों के सामने है। यह बात मैं इतने दावे से इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि इतिहास के पन्नों में इसके प्रमाण आज भी मिलते हैं।

कश्मीरी हिंदुओं का पलायन पिछले 600 सालों से चल रहा है। ये हिंदू भागकर भारत के हिमाचल, पंजाब तथा उत्तर भारत के विभिन्न जगहों पर जाते और बसते रहे। वहां के लोगों ने जब इनसे पूछा कि तुम कहाँ से हो? तो प्रत्युत्तर में इन्होंने कहा कश्मीर से। अच्छा इसका मतलब तुम कश्मीरी पंडित हो, लोगों ने कहा और इस प्रकार कश्मीरी हिंदुओं का नाम कश्मीरी पंडित? हो गया है। इन्होंने अपने को कभी पंडित नहीं कहा, बावजूद इसके कि यही वास्तविक 'पंडित' थे। लोग पूछते बताते और जिरह करते हैं कि कितने कश्मीरी हिन्दू, सिख आदि मारे और भगाए गए। आंकड़े बहुत तरह के हैं पर उन पर बहस करना समझदारी नहीं होगी। एक भी निर्दोष आदमी चाहे वह किसी भी धर्म से क्यों न हो अगर वह मारा गया है, भगाया गया है तो उसे क्यों मारा गया? क्यों भगाया गया? उस पर विचार करना और भविष्य में ऐसा न हो इसकी तैयारी करना मानवता के लिए हितकारी सिद्ध होगा। 90 के दशक में कश्मीर में, कुछ ऐसे नारे मस्जिदों और गलियों में सुनने को मिलते थे जो वाकई दिल दहला देने वाले थे। वे नारे कुछ इस प्रकार हैं -

1. जागो जागो, सुबह हुई, रूस ने बाजी हारी है।
   हिंद पर लर्जन तारे हैं, अब कश्मीर की बारी है।।

2. ऐ जालिमों, ऐ काफिरों, कश्मीर हमारा है
   यहाँ क्या चलेगा? निजाम-ए-मुस्तफा
   रालिव, गालिव, चालिव

3. हम क्या चाहते, आजादी
   आजादी का मतलब क्या
   ला इलाहा इल्लाह

4. अगर कश्मीर में रहना होगा, अल्लाहु-अकबर कहना होगा
5. पंडितो! यहाँ से भाग जाओ, पर अपनी औरतों को यहीं छोड़ जाओ

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि ये नारे जब हकीकत में बदल रहे थे तो शासन और प्रशासन क्या

कर रहा था। पिछले 600 सालों से कश्मीरी पंडितों पर अत्याचार होता आ रहा था लेकिन 1957 के बाद और शेख अब्दुल्ला के शासन में आने के बाद, और प्रशासन में मुसलमानों की बहुलता होते जाने के बाद, सब कुछ बदलता चला गया। जो थोड़े से लोग भी इन पंडितों की सहायता करना चाह रहे थे, वे भी निस्सहाय हो गए थे। इसका एक उदाहरण फिल्म के एक दृश्य में भी देखने को मिलता है। जब एयर फोर्स के सैनिक मारे जाते हैं तब ब्रह्मदत्त एक पुलिस वाले से कहता है कि तुम तो इनकी रक्षा के लिए हो तो वह पुलिस वाला कहता है कि हम आपकी सुनें या यासीन मलिक की। दिल्ली की उदासी भी भयानक थी। ब्रह्मदत्त के फोन को दिल्ली किस तरह इग्नोर करती है, यह प्रमाण है।

इस फिल्म में जो दिखाया गया है उसको किसी समीक्षक की निगाह पूरी तरह नहीं देख पाएगी। यह फिल्म किसी रेटिंग मार्किंग के आधार पर भी समझी नहीं जा सकती। इस फिल्म को हर भारतीय केवल इसलिए देखे ताकि वह ये जान सके कि हमारे इतिहास के साथ अब तक कैसे और किस प्रकार छेड़छाड़ की जाती रही है और हमसे सच को छुपाया जाता रहा है। यह दर्दनाक इतिहास जब आँखों के सामने से होकर गुजरता है, उस क्षण होने वाली अनुभूति को महसूस करने के लिए यह फिल्म देखी जानी चाहिए। विस्थापन, निष्कासन, निर्वासन जैसे शब्दों को भीतर तक उतारने के लिए यह फिल्म देखी जानी चाहिए। यह बात आप फिल्म निर्माता और एक महत्वपूर्ण चरित्र निभाने वाली पल्लवी जोशी के इस कथन से समझ सकते हैं, हम यह नहीं चाहते थे कि लोग फिल्म देख कर आएँ और कहें कि वाह ! भाई क्या फिल्म बनाई है। कश्मीरी पंडितों के साथ तो बहुत बुरा हुआ। तारीफें बटोरना मकसद नहीं था। जब एक व्यक्ति आतंकवाद से चारों तरफ से घिरा हुआ होता है तब वह क्या महसूस करता है, उसे क्या पीड़ा होती है, 32 साल बाद भी इंसाफ न मिलने का जो दर्द होता है उस पीड़ा को, उस दर्द को, दर्शकों को महसूस कराना, मकसद था। कहना न होगा कि कश्मीर फाइल्स इस उद्देश्य में शत-प्रतिशत सफल रही है।

कुछ लोग अब भी फ़िल्म के प्रभाव पर प्रश्न करते हैं? फिल्म में एक दृश्य है जब पुष्कर नाथ पंडित कश्मीर छोड़ कर जा रहे होते हैं तो वे एक पत्रकार से कहते हैं कि 'तुम दिखाओगे न हमारा ये सच, देखना जब भारत को हमारे बारे में पता लगेगा तब पुरा भारत हमारे साथ खड़ा होगा।' आज पूरे 32 साल बाद भारत को सच का पता चला है और आज पूरा भारत कश्मीरी पंडितों के साथ खड़ा हो रहा है। यही तो है फिल्म का प्रभाव जिसको दर्शक नहीं भूल पा रहे हैं। दरअसल यह फिल्म एक आईना है जिसमें 20 साल बाद के भारत को देखा जा सकता है। कश्मीर से मारे भगाए हिन्दू तो कश्मीर छोड़कर भारत भर अन्य हिस्सों में चले गए, बस गए। लेकिन पल भर के लिए सोचिए अगर यह आतंकवाद पूरे भारत में फैल जाए तो भारत के लोग कहाँ जाएँगे...? तो इसलिए यह फिल्म भारत के 20 साल के बाद का भविष्य है, अगर हमने इतिहास से और मुख्यतः कश्मीरी हिन्दुओं के इतिहास से सबक नहीं लिया तो।

यह फिल्म सोए हुए लोगों के गालों पर एक तमाचा है ताकि वे नींद से जाग सकें। 'ओ माय गॉड' (O My God) फिल्म में एक दृश्य है - उस दृश्य में एक सिक्योरिटी गार्ड रात को पहरा देते समय सो रहा होता है। इतने में कांजीलाल भगवान बन कर आता और उसे एक थप्पड़ मारता है और कहता है कि

ड्यूटी के समय सोने का नहीं। गार्ड जाग जाता है। इस दृश्य से और द कश्मीर फाइल्स फिल्म से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अभी भी वक्त है अगर हम सब हिंदू-मुसलमान, जात-पाँत, स्त्री-पुरुष के भेदभाव से मुक्त नहीं हुए तो वो दिन बहुत दूर नहीं जब दूसरे देश भारत के नाम पर इंडिया फाइल्स बनाएँगे क्योंकि हिंदुस्तान को आतंकिस्तान बनाने की तैयारी बहुत जोरों से चल रही है और यह कौन कर रहा है- आप जानते हैं। कश्मीर फाइल्स की तरह एक दिन इंडिया फाइल्स न बने इसलिए हमें अपने को बदलना होगा। जातिवाद और साम्प्रदायिकता का समूल नाश करना होगा। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि जाति के नाम पर ऊँच-नीच का भेदभाव, छुआ-छूत, धर्म के नाम पर मारपीट खून-खराबा यह सारी प्रवृत्तियाँ भारत को दीमक की तरह खाती गई हैं, जिसका दुष्परिणाम हम भोग चुके हैं और भोगते आ रहे हैं। अगर भारत के लोगों को आगे बढ़ना है और कश्मीर फाइल्स की तरह इंडिया फाइल्स न बने तो इसके लिए जातिगत भेदभाव और धर्मगत भेदभाव से ऊपर उठकर हमें मिल-जुल कर इस आतंकवाद के खिलाफ लड़ना होगा। हमारे देश की आधी आबादी स्त्रियाँ हैं। आतंकवाद के खिलाफ लड़ने के लिए भारत की स्त्रियों को पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा। बहुत लंबे समय से स्त्रियों को पुरुष प्रधान समाज ने दबा कर रखा था और है। हमारे पिछड़ेपन और दुर्गति का एक बड़ा कारण यह भी है।

बड़े-बड़े महापुरुष कह कर गए हैं कि मानव प्रेम ही वह तत्व है जिसके कारण यह संसार आज बचा हुआ है। तो अगर हमें जिंदा रहना है और ठीक से जिंदा रहना है तो है तो संसार में मानव प्रेम का प्रचार करना आवश्यक है। क्योंकि इंसान को करोड़ों साल लगे हैं जानवर से इंसान बनने में और वह उसी रास्ते पर फिर से वापस जानवर बनने निकल पड़ा है। कश्मीरी हिंदुओं का पलायन क्या कायरता थी या आत्म सम्मान की रक्षा? 90 के दशक में उस समय सभी सार्वजनिक जगहों पर एक ही नारा मुख्य रूप से जोर-शोर से सुनने को मिलता था, रलिव, गलिव, चलिव मतलब या तो धर्म बदलो या भाग जाओ या मर जाओ। फिल्म 'जय भीम' में एक दृश्य है जिसमें राजकन्नू चोरी के इल्जाम में जेल जाता है और पुलिस कर्मियों द्वारा उसे बेरहमी से मारा जाता है, इतना मारा जाता है कि मार खा-खा कर उसकी जान चली जाती है फिर भी वह गुनाह कबूल नहीं करता। वह कहता है कि जो चोरी उसने की ही नहीं भला उस कलंक को अपने चरित्र पर क्यों आने दे..।

ठीक उसी प्रकार 90 के दशक में कश्मीरी पंडितों के घरों पर पत्थर मारे गए, उनके घरों को जलाया गया, उनको लूटा गया, अपने धर्म और सांस्कृतिक पहचान के कारण रलिव गलिव चलिव जैसे नारे लगा कर उन्हें धमकियाँ दी गई। कुछ हिंदू डर कर मुसलमान बन गए लेकिन बाकी बचे सभी हिंदू या तो मारे गए या भाग गए। वे चाहते तो मुसलमान बनकर, अपनी आत्मा को मार कर कश्मीर में रह सकते थे, लेकिन उन्होंने हिंदू रहकर मरना सही समझा, हिंदू रहकर अपनी मातृभूमि से मजबूरी के कारण भागना सही समझा, लेकिन अपने स्वाभिमान को नीचे गिरा कर मुसलमान बनना कभी भी स्वीकार नहीं किया। इसीलिए कश्मीरी पंडितों का कश्मीर छोड़कर भाग जाना कायरता का नहीं स्वाभिमानी होने का प्रमाण है।

'शिंडलर्स लिस्ट' और 'द पियानिस्ट', यहूदियों पर हुए अत्याचार पर बनी, महत्वपूर्ण फिल्में हैं

जिन्हें आज तक पूरी दुनिया याद करती है। यहूदियों ने इन फिल्मों के द्वारा और मुजियमस आदि के द्वारा भी, इस विषय पर दुनिया को कभी भूलने नहीं दिया। वहाँ के लोगों ने इन फिल्मों का प्रचार किया। लेकिन दूसरी तरफ भारत में आज जब कश्मीरी पंडितों के नरसंहार का सच सामने उभर कर आया है तो कुछ लोग इस फिल्म को प्रोपेगेंडा समझ कर इसका विरोध कर रहे हैं। भारत में जिसने भी कश्मीरियों पर बोलने की कोशिश की उस को चुप करा दिया गया इसलिए आज तक इस विषय पर किसी ने भी ऐसी फिल्म बनाने की नहीं सोची थी। कश्मीर का सच इतना बड़ा सच है कि ये लोगों को झूठ ही लगता है। कुछ लोग ये नहीं चाहते कि पूरी दुनिया कश्मीरी पंडितों के नरसंहार के बारे में जाने। अगर आप इस विषय पर फिल्म बनाएँगे तो या तो आप को जान से मार दिया जाएगा या आपके चरित्र को कलंकित कर दिया जाएगा या आपका जीना इतना हराम कर दिया जाएगा कि आप एक जिंदा लाश बन जाएँगे। यही कारण है कि किसी ने भी इस विषय पर बोलने की कोशिश नहीं की। इसलिए कश्मीर फाइल्स पर आज हजारों उंगलियाँ उठ रही हैं। क्योंकि कुछ लोग यह नहीं चाहते कि इतिहास के साथ की गई छेड़खानी लोगों के सामने आए।

कश्मीर का इतिहास, कश्मीरी पंडितों का इतिहास, कश्मीरी पंडितों के पलायन का इतिहास, उनके नरसंहार का इतिहास। ये कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर कई किताबें लिखी गई हैं - जो इस प्रकार हैं- 'माय फ्रोजेन टरबुलेन्स इन कश्मीर' लेखक जगमोहन हैं। इस किताब में 90 के दशक की घटनाओं का जिक्र, कश्मीरी पंडितों को किस प्रकार घर छोड़ने पर मजबूर कर दिया उसका जिक्र देखने को मिलता है। 'कल्चर एंड पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर' लेखक पीएनके बामजई हैं। इस किताब में कश्मीरी पंडितों के बारे में, उनके साथ हुए अन्याय के बारे में लिखा गया है। 'आवर मून हेज ब्लड क्लॉट्स' लेखक राहुल पंडिता। राहुल पंडिता भी एक कश्मीरी पंडित हैं और यह उनकी आत्मकथा ही है। इसमें जो तारीखें भी दी गई हैं वे भी असली हैं। उन्होंने अपने परिवार के सदस्यों के द्वारा भोगी गई घटनाओं को इस किताब में दर्ज किया है। क्या कश्मीर फाइल्स उस तरह की फिल्मों में से एक है जिनकी बात रॉबर्ट करते हैं? 40 से अधिक हॉलीवुड की फिल्मों के लेखक निर्देशक रॉबर्ट आल्टमेन के अनुसार मैं नहीं समझता कि अभी तक वास्तव में कोई बढ़िया फिल्म बन पाई है। मैं समझता हूँ कि फिल्म की वास्तविक कला को कोई ऐसा बालक ही खोजेगा, जो इस समय कहीं पर अपनी साइकिल चला रहा होगा। जब ऐसी फिल्म बनेगी, तब दर्शक सिनेमा हॉल से न केवल प्रभावित होकर, बल्कि वशीभूत होकर निकलेगा परंतु वह अपने वशीभूत होने के कारण को बयान नहीं कर पाएगा क्योंकि पिक्चर ने उसकी सारी इन्द्रियों पर एक साथ प्रभाव छोड़ा होगा। यह फिल्म देख कर दर्शक फूट फूट कर रो रहे हैं, फिल्म ने दर्शकों को इस प्रकार वशीभूत कर दिया है कि वे निर्देशक के पैर छू रहे हैं। विस्थापन, निष्कासन, नरसंहार यह बहुत ही बड़े-बड़े शब्द हैं, इस फिल्म को देखकर दर्शकों ने इन शब्दों की गहराई में उतर कर उस पीड़ा को आत्मसात किया है, उस दर्द को महसूस किया है। मैं यह कह सकता हूँ कि यह उन्हीं फिल्मों में से एक है जिनकी बात रॉबर्ट आल्टमेन कर रहे थे।

इस फिल्म ने यह सिद्ध कर दिया कि अच्छे निरीक्षण, परीक्षण के बाद प्रस्तुत किया गया सच कितना ही कड़वा क्यों न हो वह दर्शकों के भीतर तक न केवल पहुँचता है अपितु अपना प्रभाव भी छोड़ता

है। सिनेमा हजार पुस्तकों का कार्य अकेले करने में सक्षम है। इस बात को विवेक अग्निहोत्री की 'कश्मीर फाइल्स' ने साबित करके दिखाया है। यही सिनेमा की विशेषता है। और यही सिनेमा का महत्व है। विस्थापन, निर्वासन, पलायन और निष्कासन जैसे शब्दों की चोट क्या होती है, यह सिर्फ़ वही समझ सकता है जिसने खुद इन शब्दों के घाव सहे हो। संयम क्या होता है? सहनशीलता क्या होती है? यह अगर जानना है, समझना है तो एक बार कश्मीरी पंडितों से मिलिए, और उन को सुनिए क्योंकि टूटे हुए लोग बोलते नहीं उन्हें सुना जाता है। कितनी दुःख की बात है कि आज देश में सहनशीलता पर बड़े-बड़े बयान देने वाले व्यक्तियों को कश्मीरी पंडितों की चीखें सुनाई नहीं देती। वो कश्मीरी पंडित जिन्होंने इतना कुछ सहा और पूरे संयम के साथ सहा, क्या उनका यह संयम देश के उन महान बुद्धिजीवियों को, उन महान इतिहासकारों को, उन महान फिल्मकारों और कलाकारों को कभी दिखाई नहीं दिया ! या वे देखना नहीं चाहते..?

'द कश्मीर फाइल्स' सिर्फ एक फिल्म नहीं है यह उन लोगों की कहानी है जिनके होंठ सिल दिए गए ताकि वे अपना दर्द किसी के सामने बयां न कर पाए। कश्मीर फाइल दो दिनों की कहानी है- पहला आज का दिन जिसमें मैं, आप तथा हम सब जी रहे हैं। दूसरा वो दिन (19 जनवरी, 1990) जिसमें कश्मीरी पंडित आज भी जी रहे हैं। बहुत तालियां बच गईं, बहुत प्रचार हो गया, बहुतों के आँखों से आँसू आ गए। लेकिन क्या ये तालियों की गूँजें, आँखों से टपकी हुई बूंदें फिर से सिर्फ इतिहास बन कर रह जाएँगी? यह विषय इतना पुराना, इतना बड़ा और इतना महत्वपूर्ण है कि इस पर बैठकर बड़ी-बड़ी बातें करना, बड़ी-बड़ी जगह पर सेमिनार आयोजित करना, बेकार है। फिल्म देख कर लोगों का दिल दहला है लेकिन उनका क्या जिनके साथ ऐसा हुआ है। सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि पीड़ितों के हित में कुछ कर सकें तो करें क्योंकि उन्हें इसी की जरूरत है। क्योंकि बड़ी-बड़ी बातें करना कोई बड़ी बात नहीं है।

सहायक सामग्री :

1. मनोज मुंतशिर (गीतकार)
2. विकीपीडिया
3. उत्तरप्रियदर्शी (यूट्यूब चैनल)
4. नवभारतटाइम्स.इंडिया.कॉम
5. फिल्मी बेटा हिंदी
6. आई एम इंडिया
7. दीपावली- लेखिका अंकिता
8. फिल्म - ओ माय गॉड
9. फिल्म - जय भीम
10. ज़ी न्यूज़ इंटरव्यू- अनुपम खेर, विवेक अग्निहोत्री, पल्लवी जोशी
11. इंडिया.टीवी इंटरव्यू- पल्लवी जोशी
12. राजीव रंजन प्रसाद (लेखक)
13. फिल्म सेल्यूलाइट पर लिखी हुई कविता है - रॉबर्ट आल्टमेन
14. आउटलुकहिंदी.कॉम पर सिद्धार्थ गीगू : एक कश्मीरी पंडित
15. द देशभक्त (यूट्यूब चैनल)- खुशबु मट्टो : एक कश्मीरी पंडित
16. अभी एंड नीउ (यूट्यूब चैनल)

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

और मुकेश जाल, छात्र, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

रुक्माजी राव 'अमर' की कविताएँ

कर्नाटक के बल्लारी में जन्मे रुक्माजी राव 'अमर' (2.12.1926 - 9.6.2011) बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। कवि, निबंधकार, समीक्षक के साथ-साथ वे रंगमंच के अभिनेता और निर्देशक भी थे। उनकी काव्य कृतियों में 'नया सूरज' 'खुली खिड़कियों का सूरज', धड़कन, तन्हाई में, अपने-अपने समय आदि उल्लेखनीय हैं। 'आईने के सामने' उनका व्यंग्य संग्रह है तो 'बादलों की ओट में' एकांकी। 1946 से लेकर मृत्युपर्यंत उन्होंने हिंदी प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई।

मित्रता

सच्ची मित्रता में रहती निहित पवित्रता
होती है छिपी उसमें
गुणशीलता, सहनशीलता, क्षमाशीलता,
टिकी रह सकती यह दीर्घकाल तक शास्वत
परस्पर आदान प्रदान पर

शब्दों में व्यक्त करना इसकी गहनता को बहुत मुश्किल
मेरे लिए तुम्हारी मित्रता
रखती है एक विशेष अर्थ
रह सकता मैं तुम पर सदा निर्भर

जब कभी होता हूँ विकल
निकट आता हूँ तुम्हारे पास पाने को आश्वासन।
उसीको समझना मित्र
जो मुसीबत में आ जाये काम

उसीको समझना हमसफ़र
जो गम पहुँचाये आराम
जब कभी रहता हूँ खुश
मुख पर मेरे मुसकान थिरकती

प्रसन्नता मन की मुख पर झलकती
चाहता हूँ मैं कितना
बने रहो तुम सदा मेरे मित्र
बसे रहो मन में मेरे, जाओ न कहीं अन्यत्र।

अक्षम्य अपराध

बेचारा किसमत का मारा
भोला-भाला, सीधा-सादा
ग्रामीण एक.....
देखने आया सहसा नगर।

ग्रामीण भाषा में
अपना दिया परिचय . . .
संस्कृति है भारत की
अक्षुण्ण आज भी

लोक साहित्य में
एवं ग्रामों में सुरक्षित
साधन हैं विपुल प्राकृतिक
आज भी सुरक्षित

किया उसने घोषित।
नागरिक जो था शिक्षित
होकर क्रुद्ध कहा ग्रामीण से

अबे ! चुप उजबक, अहमक
अंग्रेज़ी का तुझे नहीं बिल्कुल ज्ञान,
क्यों न कितना भी ग्रामीण महान,
नगर में होता न उसका मान ;

डाक भी यहाँ हो जाती लापता यदि
अंकित न हो अंग्रेज़ी में पता।

नहीं था बेचारा वाक्-पटु,
बोलता था सदा सत्य कटु;
नगर में बोलबाला झूठ का
चलता जोरों से धंधा जहाँ लूट का।

पकड़ा गया ग्रामीण तुरंत
बंद कर दिया गया हवालात में
स्फटिक सत्य के अपराध में
उसके अक्षम्य अपराध के

आँखों देखे गवाह अनेक,
असली अपराधी मगर
कभी के हो गया फरार,

है सिपाही उसकी टोह में
सच और झूठ के बीच
छिड़ गई है ज़ोरदार तकरार।

दीन-धर्म के नाम पर

आसमाँ को नहीं,
जमीं पर बसनेवाले
जन-जन के मन को
छू लेना मैं चाहूँगा।

इन्सान के लिए नहीं,
इन्सानियत के लिए
जीनेवालों के
गीत मैं गाऊँगा।

छोड़ो यह नादानी
दीन-धर्म के नाम पर
इन्सान को इन्सान से
भाई को भाई से
भगवान को भगवान के खिलाफ़
खड़ा करने की चाल, फितरत
हो गई बड़ी पुरानी-
चुनो कोई राह आसानी,

मिले जहाँ दिल को राहत
पूजा व नमाज़ के पाक ठौर पर
न होने पाये कोई इन्सान आहत।

भगवान का नाम लेकर
शैतान की करतूत करने
अल्लाह का नाम लेकर
जल्लाद की करतूत करने
किसने तुम्हें सिखलाया ?

वह तो इन्सान नहीं
हैवान से भी बत्तर है।
यह हिंदू है, वह मुसलमान
यह सिक्ख है, वह ईसाई बेईमान
कहना है बहुत-बहुत आसान।

करो पैदा इनके दिलों में
आत्मीयता व सद्भाव,
आपस का यह बैर,

न पहुँचायेगा तुमको
किसी ठिकाने-ठौर।

जब उठती है अर्थी,
और उठता है जनाजा,
चाहिए तुम्हें खालिस,
बस छह गज़ का ही ठौर
करते हो क्यों इसके लिए
इतना खून-खराबा
ऐसा हंगामा-हुडदंगा?

मंदिर और मसजिद को तुमने
इन्सान के खून से रंगा,
काटो तो क्या पहचानोगे?
यह हिंदू है, वह मुसलमान,
यह सिक्ख है, वह ईसाई बेईमान।

त्यागो यह अपना झूठा अभिमान,
इन्सान बनो इन्सान -
तभी होगा खुश तुमसे भगवान,
जो देता है जान उसीको पहले पहचान
लेने को किसी की जान
दिया नहीं भगवान ने तुम्हें कभी परवान

अरे अकल के दुश्मन
छोड़ो ये सारे फन,
त्यागो सारे अत्याचार
त्यागो सारे अवगुण,
जग का जो पालनहार है,
करो उस सिरजनहार का गुणगान,
इस ज़मी पर तुम फकत
चार दिन के हो मेहमान।

जीत की रीत

किस दल की होगी
चुनाव में और जीत?
और मतों की होगी कैसी वह रीत?
रक़म योजनाओं की
हो गई है ख़तम;
अकाल से लोग
हो गये हैं बेहाल,
योजनाओं का पैसा
खा गया है दलाल।
नगर पालिका
बन गई है दिवालिया,
सड़कों का बेहद
बिगड़ गया है हुलिया।
शासक दल की
कमज़ोरियाँ हैं बेशुमार,
प्रकटा रहा है विपक्षी दल
जनता के सम्मुख
लच्छेदार शब्दों में ज़ोरदार।
शकुनी को पुनः
लेना है अवतार,
चाणक्य को पुनः
करना है हुँकार,
दूर करने को भ्रष्टाचार,
अन्याय, अत्याचार।
होगा न फिर
रावण का राज्य,
देश तो
सदा रहेगा अविभाज्य।

मन की दिशा

टूटे दिल को जोड़ने,
मन को सही दिशा में मोड़ने,
साँझ की जब सलोनी हो साया,
बहुत ही मन हो भरमाया-
श्यामल श्यामल मेघ हो फैले
पंछी उड़ते हों अलबेले,
बिछाकर पलकें निहारता रहा अनिमेष
था बहुत लम्बा मार्गशेष.....
चुम्बक-सी कोई शक्ति अज्ञात
खिंच ले गई मुझे कुटिया के पास
हो गया अब पूरा विश्वास
न पड़ेगा भटकना अधिक
यही है, यही है, यही है वह ठौर
करो न देरी और-और
मिलेगा मन को किंचित संतोष
खोल दो मन के द्वार
स्वीकारो मेरा प्यार
दे रहा हूँ कब से मैं आवाज़
शायद सोये हो सुधबुध खोकर
अथवा जग की दुनियादारी से हाथ धोकर।

लक्ष्य

गुमराह हो गया इन्सान
भूल गया कि सर्वोच्च है भगवान,
उतर आया हैवानियत पर
करने लगा है
आज़ादी के अधिकारों का दुरुपयोग
वढ़ रहा तेज़ी से पतन की ओर,
मचा रहा है शोर।
जीवन को समाज से,
समाज को धर्म से,
धर्म को भगवान से,
भगवान को इन्सान से,
इन्सान को न्याय से,
न्याय को नियम से,
नियम को नीति से,
नीति को कर्म से,
कर्म को निष्ठा से,
निष्ठा को भक्ति से,
शक्ति को श्रद्धा से,
श्रद्धा को विरक्ति से ;
अलग करने में हो रहा है शक्ति का ह्रास
जान-माल की हानि को
दे रहा महज विजय की संज्ञा,
खड़े होकर राजनीति के कठघरे में
ऊँची आवाज़ में कह रहा है
बँटा हुआ है इन्सान,
बँटा हुआ है भगवान,
बँटा हुआ है जहान,
बँटा हुआ है जल और थल
बिगड़ा हुआ है ईमान,
भटका हुआ है इन्सान,
भटके हुए इन्सान की खोलनी है आँखें,
और जगानी है सुत्प चेतना पुनः
करना है मार्ग उसका प्रशस्त निरंतर
ताकि वह पहुँचे लक्ष्य तक अचूक।

आलेख

स्त्री की बदलती छवियाँ : 'वोल्गा से गंगा' का विशेष संदर्भ

- बलविंदर कौर

सन् 1944 में प्रकाशित 'वोल्गा से गंगा' राहुल जी का दूसरा कहानी संग्रह है। इसमें बीस ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। इनमें उन्होंने 6000 ई.पू से लेकर 1942 ई. तक के हिंदी-यूरोपीय (भारोपीय) जाति के विकास और इतिहास का चित्र अंकित किया है। इस संदर्भ में उनका यह कथन द्रष्टव्य है- 'मैंने हर एक काल में समाज को प्रामणिक तौर से चित्रित करने की कोशिश की है, किंतु ऐसे प्राथमिक प्रयत्न में गलतियाँ होना स्वाभाविक है। यदि मेरे प्रयत्न ने आगे के लेखकों को ज्यादा शुद्ध चित्रण करने में सहायता की तो मैं अपने को कृत्कार्य समझूँगा।' (राहुल सांकृत्यायन, वोल्गा से गंगा, प्रथम संस्करण का प्राक्कथन, किताब महल, इलाहाबाद, 2007)। इसके अतिरिक्त दूसरे संस्करण की भूमिका में वे लिखते हैं- 'लेखक की एक-एक कहानी के पीछे उस युग के संदर्भ की वह भारी सामग्री है, जो दुनिया की कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, मिट्टी-पत्थर, ताँबे, पीतल, लोहे पर सांकेतिक व लिखित साहित्य अथवा अलिखित गीतों, कहानियों, रीति-रिवाजों, टोटके-टोनों में पाई जाती है।' (राहुल सांकृत्यायन, वोल्गा से गंगा, द्वितीय संस्करण पर दो शब्द)। अतः इसके पार्श्व में राहुल जी का रचनात्मक उद्देश्य है मानव-समाज की प्रगति का सैद्धांतिक विवेचन।

संग्रह की कहानियाँ - निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरूहूत, पुरुधान, अंगिरा, सुदास, प्रवाहण, बन्धुल मल्ल, नागदत्त, प्रभा, सुपर्ण चौधेय, दुर्मुख, चक्रपाणि, बाबा नूरदीन, सुरैया, रेखा भगत, मंगल सिंह, सफ़दर तथा सुमेर आदि प्रमुख हैं। प्रत्येक कहानी की समाप्ति के पश्चात् पाद्-टिप्पणी के रूप में उस कहानी के प्राग्-ऐतिहासिक-ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित किया गया है। लेखक के व्यापक दृष्टि विस्तार ने आठ सहस्र वर्षों तक प्रसारित मानव जीवन के विकास का साक्षात्कार इन कहानियों के माध्यम से तो करवाया ही है, साथ ही मनुष्य जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक विकास-क्रम की भी परत-दर-परत गाँठें खोली है।

वास्तव में यह कहानी संग्रह हमारे सभ्य समाज के शुरुआती युग को मातृसत्तात्मक करार देता है। यह संग्रह स्त्री के वर्चस्व की बेजोड़ रचना है। संग्रह की पहली कहानी है 'निशा' (माँ, 6000 ई.पू. के काल का चित्रण करती है।)। इस समय मातृसत्तात्मक व्यवस्था के वर्चस्व को माँ निशा के माध्यम से बड़े ही घटनाक्रम के साथ सृजनात्मक रूप दिया गया है। इस आदिम युग के मानव पाषाण और लकड़ी के बने हथियारों से शिकार करते थे, वस्त्र के लिए पशुओं की चर्म का उपयोग करते थे, माँ (स्त्री) का राज्य था। यौन-वर्जनाओं से पूर्ण अपरिचित था, संतान के पिता की नहीं सिर्फ माँ की ही सामाजिक पहचान हो पाती थी। "और पास चलकर देखें। सबसे आगे सुपुष्ट शरीर की एक स्त्री है। आयु चालीस और पचास के बीच होगी। उसकी

खुली दाहिनी भुजा को देखने से ही पता लगता है कि वह बहुत बलिष्ठ स्त्री है।" (वोल्गा से गंगा, पृ.9)

'किंतु हाँ, माँ को सभी पुरुषों पर समान और प्रथम अधिकार था। अपने चौबीसे पुत्र और पति के चले जाने से उसे अफसोस न हुआ हो, यह बात नहीं, किंतु उस समय जीवन अतीत से अधिक वर्तमान-विधान की फिक्र रहती थीं।' (वोल्गा से गंगा, पृ.14)। निशा (माँ का नाम) की भाँति ही दूसरे परिवारों पर भी उनकी माताओं का शासन था, पिता का नहीं। वस्तुतः वहाँ किसका पिता कौन है, यह बतलाना असंभव था। निशा को आठ पुत्रियों और छह पुत्र पैदा हुए, जिसमें चार लड़कियाँ और तीन पुत्र अब भी उसकी पचपन वर्ष की अवस्था में मौजूद हैं। (वोल्गा से गंगा, पृ.15)

इसी कहानी के अंत में निशा उम्र के ढलते पड़ाव में जब पुरुषों को अपनी बड़ी बेटी लेखा के आधिपत्य के स्वीकार और आकर्षण को देखती है तो अहं भावना के वशीभूत होकर बेटी को वोल्गा की भेंट चढ़ाते-चढ़ाते स्वयं भी डूब जाती है। फिर सभ्यता की अगली कड़ी के रूप में परिवार की बलिष्ठ स्त्री रोचना - निशा परिवार की स्वामिनी बनती है।

मनुष्य विकास की अगली कड़ी के रूप में 'दिवा' 3500 ई.पू के वोल्गा तट से ली गई कहानी है। दिवा बहुत ही होशियार और बुद्धिमान नायिका थी। उषा जन पर विजय प्राप्त कर मानसिक आतंक स्थापित करता है। 'दिवा अपने तरुण पुत्र, बसु के साथ आज नाच रही थी, दोनों नग्न मूर्तियाँ नृत्य के ताल में ही कभी दूसरे को चूमती, कभी चक्कर मार कर भिन्न-भिन्न नाट्य-मुद्राएँ दिखलातीं।' (वोल्गा से गंगा, पृ.25)। इस युग में ही कई स्त्रियों का वर्चस्व समाज पर स्थापित हो जाता है- 'जन एक जीवित माता का राज्य नहीं, बल्कि अनेक जीवति माताओं के परिवारों का एक परिवार एक जन है, यहाँ एक माता का अकंटका राज्य नहीं, जन-समिति का शासन है, इसलिए यहाँ किसी निशा को अपनी लेखा को वोल्गा में डूबाने की जरूरत नहीं।' (वोल्गा से गंगा, पृ.28)। अब दो जन बन गए हैं - निशा जन और उषा जन।

'अमृताश्व' 3000 ई.पू के परिवेश पर रचित कहानी है। अमृताश्व कुरुकुल का महापितर है। इसमें कुरू संस्कृति और उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने की प्रथा है। यहाँ मधुरा और कुरू स्त्रियों के माध्यम से राहुल जी ने आर्य-नारी के मुक्ति काल की स्मृतियों को अभिव्यक्ति दी है। इस जिन्दादिल युग में स्त्री ने अभी अपने को पुरुष की जंगम सम्पत्ति होना नहीं स्वीकार किया था, इसलिए उसे अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था। अतिथियों और मित्रों के पास स्वागत के रूप में अपनी स्त्री को भेजना, उस वक्त का सर्वमान्य सदाचार था। कहानी की नायिका सोमा पति कृच्छाश्व के अतिरिक्त अन्य पुरुषों से भी संबंध रखती है। जैसे अपने पुराने मित्र ऋज्राश्व के आने पर उसका आतिथ्य संस्कार के साथ-साथ उसे प्रेम का रस भी पिलाती है। लेकिन इस कहानी के अंत तक आते-आते मातृसत्तात्मक साम्यवादी समाज धीरे-धीरे पितृसत्ता-पुरुष प्रधानता वाले युग में परिणत होता गया। 'अब स्त्री नहीं पुरुष का राज्य है, जन नायिका जन

समिति का नहीं, बल्कि लड़ाके महापितर का शासन है।' (वोल्गा से गंगा, पृ.39)

'पुरुहूत' कहानी में आकर स्त्रियों की दशा में और असामान्य परिवर्तन आए। 'इन्द्र (पुरुहूत) की सेना ने पर्शु-ग्रामों को लुटते हुए...निचले मद्र और पर्शु-जनों का जो भी पुरुष-बाल रुग्ण, वृद्ध उनके हाथ आया, उसे उन्होंने जीवित नहीं छोड़ा और स्त्रियों को अपनी स्त्रियों में शामिल कर लिया।' 'पुरूधान' कहानी में असुरों की सामाजिक व्यवस्था में स्त्री जीवन में काफी परिवर्तन आया। 'जहाँ स्त्री के राज्य में परिवार का परिवार सदा एकत्र रहता, एक साथ काम करता, वहाँ अब अपना-अपना परिवार, अपना-अपना पशुधन और उसका हानि लाभ भी अपने ही को था।' (वोल्गा से गंगा, पृ.39)। इतना ही नहीं अब स्त्रियों को पुरुष की इच्छानुसार चलना होता था। 'कुरुआनियाँ आज तुम्हें भी मैं रणक्षेत्र में आने की आज्ञा देता हूँ। पुरानी कुरुआनियाँ युद्धक्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेती थी, यह हम वृद्धों से सुनते आये हैं। आज तुम्हारा महापितर अमृताश्व तुम्हें इसकी आज्ञा देता है।' (वोल्गा से गंगा, पृ.41)। असुर सभ्यता के समाज में जहाँ वेश्यावृत्ति पाई जाती है- 'हरेक सामन्त की सैकड़ों स्त्रियाँ और दासियाँ होती थीं। स्त्रियों को भी वह दासियों की भाँति रखते थे। हाल में असुर राजा ने कुछ पहाड़ी (आर्य) स्त्रियों को भी बलात अपने रनिवास में दाखिल किया था।' (वोल्गा से गंगा, पृ.70)। परंतु आर्य के यहाँ आर्य-स्त्रियों को व्यापक स्वतंत्रता और समानता का विवरण मिलता है। अतः अभी तक आर्यों में स्त्रियों को पराधीन कर रखने का प्रचलन नहीं आया था।

कविता

माँ मुझको जन्म लेने दो

- अंकुर सिंह

माँ मुझको जन्म लेने दो,
खुली हवा में जीने दो।
भ्रूण हत्या से बचा मुझे,
गर्भ के बाहर आने दो।।

कल्पना बन अंतरिक्ष को जाऊँगी,
प्रतिभा ताई बन देश चलाऊँगी।
मुझे कोख में मत मार माँ,
मैं बापू की पहचान बनाऊँगी।।

भैया संग स्कूल जाऊँगी,
घर के कामों में हाथ बटाऊँगी।
घर के आँगन में चहकने वाली मैं,
दुल्हन लिबास ओढ़े ससुराल जाऊँगी।।

दो परिवारों का सम्मान है बेटी,
मुझको भी अच्छी शिक्षा देना।
जमाना क्या कहता, परवाह नहीं,
मुझे बस तेरे ममता तले है रहना।।

मत मारो मुझको माँ,
दो जीने का अधिकार।
तू भी तो एक बेटी थी,
जन्म दे मुझे कर उपकार।।

माँ मुझे आज जन्म लेने दो,
अपने सपने को मुझे छू लेने दो।।
चलूँगी तेरे पद चिह्नों पर,
बस ! मुझे आज जन्म ले लेने दो।।

हरदासीपुर, चंदवक, जौनपुर - 222129 (उ.प्र.)

'सुदास' कहानी 1500 ई.पू के कालखंड पर आधारित है। पांचाल राजकुमार, सुदाम से मद्रपुर कुमारी अपाला इसलिए विवाह करने में असमर्थ है क्योंकि पांचाल में नारी स्वातंत्र्य नहीं है। माता की मृत्यु के पश्चात् आकर विवाह करने का सुदास का वचन मिथ्या हो जाता है, अपाला सुदास की राह देखते-देखते प्राण त्याग देती है। इसके पश्चात् प्रवाहण, बंधुल मल्ल, नागदत्त, प्रभा, सुपर्ण चौधेय, दुर्मख, चक्रपाणि, बाबा नूरदीन, सुरैया आदि कहानियाँ सामन्तवादी युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। सामन्त-युग में स्त्री की अवस्था बहुत अधिक गिरी हुई नहीं थी परंतु पतनोन्मुख हो रही थी। इस युग में उच्च वर्ग तो वस्तुतः स्त्री को केवल विलास-सामग्री से अधिक कुछ समझता ही नहीं था।

'प्रवाहण' कहानी 700 ई.पू की है। इस कहानी में मामा के पास अध्ययनरत प्रवाहण बाल प्रेयसी लोपा की बुआ का पुत्र है। कालांतर में प्रवाहण लोपा से विवाह करता है तथा पांचाल प्रदेश का सम्राट बनता है। ब्रह्मवादी तथा पुनर्जन्मवादी प्रवाहण का लोपा विरोध करती है। अतः स्त्री असत्य बातों का विरोध करने का साहस करती थी।

याज्ञवल्क का गार्गी को सिर गिरा देने का संदर्भ और गार्गी-लोपा (बुआ) में विचार विमर्श भी एक तरह से उस समय की स्त्री दिशा का चित्रण करता है- 'आज और मेरा सिर तब से चकराता है, जब से मैंने होश संभाला सारा ढोंग, पूरी वंचना। प्रजा की मशक्कत की कमाई को मुफ्त में खाने का तरीका है। यह राजवाद, ब्रह्मवाद, यज्ञवाद, प्रजा को कोई इस जाल से तब तक नहीं बचा सकता, जब तक कि वह खुद सचेत न हो, और उसे सचेत होने देना इन स्वार्थियों को पसंद नहीं है।' (वोल्गा से गंगा, पृ.124)

'बधुल मल्ल' कहानी का समय 490 ई. पू है। बधुल मल्ल का सहयोग मल्लिका करती है परंतु बधुल मल्ल अपनी मातृभूमि कुसीनारा मल्ल-गण के षड़यन्त्रों को समझकर प्रसेनजित के पक्ष में अपनी मातृभमि के विपक्ष में युद्ध करता है। परंतु प्रसेनजित के कच्चे कानों की वजह से कुटुंब सहित वीरगति को प्राप्त होता है। अतः यहाँ बधुल मल्ल और मल्लिका के समान अधिकार भाव और प्रेम को दर्शाया गया है। 'नागदत्त' कहानी में 335 ई. पू का परिवेश है। यह चाणक्य के सहपाठी नागदत्त और पर्शुपुरी सम्राट की महाक्षत्रपाणी के सम्यक् उपचार वे उपलक्ष्य में वैद्य नागदत्त को दासी सोफिया प्राप्त होती है। सोफिया बताती है कि 'हमारे यहाँ मकदूनिया का राजा फिलिप भी एक से अधिक ब्याह नहीं कर सकता। यहाँ (पार्शवों) तो छोटे-छोटे राजकर्मचारी तक कई-कई शदियाँ करते हैं।' (वोल्गा से गंगा, पु.153)। सोफिया को दासता से मुक्त कर उसकी मातृभूमि एथेंस पहुँचाकर उदात्त नागदत्त से सोफिया विवाह कर लेती है।

'प्रभा' कहानी (50 ई.पू) में तारुणियों को स्वयंवर का अधिकार था। साकेत प्रदेश के परिवेश का एक चित्रण है- आज के तैराकी के महोत्सव से बढ़कर अच्छा अवसर किसी तरुण-तरुणी को सौन्दर्य परखने का नहीं मिल सकता था। हर साल इस अवसर पर कितने ही स्वयंवर सम्पन्न होते थे।' (पृ.163)।

अश्वघोष और कोसल के ख्यात सार्थ-वह दत्तमित्र की पुत्री प्रभा। अश्वघोष यवन पुत्री प्रभा से इतना प्रेम करता है कि अपने ब्राह्मण माता-पिता को इस प्रेम को स्वीकारने के लिए मना लेता है- 'माँ अश्वघोष की युक्तियों से संतुष्ट नहीं हो सकती थी, किंतु जब उसने कहा कि प्रभा और मेरे प्राण अलग नहीं रह सकते, तो वह पुत्र के पक्ष में हो गई और बोली-पुत्र, मेरे लिए तू ही सब कुछ है।' (पृ.182)। अंत में अश्वघोष को महान बनाने के लिए प्रभा अपना आत्म-दान कर देती है।

प्रभा उस समय के परिवेश में ब्राह्मणों के स्वार्थ का चित्रण करते हुए कहती है- 'यवनों में स्त्रियों का सम्मान तब भी दूसरे से ज्यादा है। उनमें आज भी चाहे निस्संतान मर जाय, किंतु एक स्त्री के रहते दूसरे से ब्याह नहीं हो सकता। और यह ब्राह्मण सौ-सौ ब्याह कराते फिरते हैं, सिर्फ दक्षिणा के लिए।' (पृ.187)

'दुर्मुख' (630 ई) कहानी में सती प्रथा का चित्रण कवि बाण के माध्यम से होता है- 'हर साल लाखों लाख तरुणियों को बलात् अग्निशात् करते देख जिन देवताओं का हृदय नहीं पसीजता वह या तो वस्तुतः ही पत्थर के है अथवा है ही नहीं।' (पृ.214)

बाणभट्ट ने कई तरुणियों को राजा के रनिवास से निकाल कर उनके अस्तित्व को रूप देने का प्रयास किया- 'एक दिन के चुम्बन, एक दिन के आलिंगन या एक दिन की सहशय्या के बाद जहाँ लाखों तरुणियाँ अंतःपुरों में बंद करके रख दी जाएँ, वहाँ कलाकार स्त्रियाँ कहाँ से मिलें? ठीक कहते हो आचार्य! मैं इसे अनुभव करता हूँ, किंतु एक बार अंतःपुर में रख लेने पर हम उन्हें निकालें कैसे? इस पर मैं उन्हें ढंग बतलाता। गाना-नाचना, आज हमारी राज-कन्याओं, सामन्त-कन्याओं और राजन्तःपुरिकाओं के लिए अनिवार्य है।...मैं अपनी चतुर नारियों को भेजता। राजा अपनी उन अन्तःपुरिकाओं को कला सीखने के लिए उनके पास जाने को कहता।' (पृ.217)। जहाँ हमारे ऋषि विधवाओं के लिए गर्भ-हत्या और विधवा-विवाह पसंद करार दिया गया। देवर दूसरा वर बिलकुल उचित समझते और कोई तरुण विधवा ब्राह्मणी, क्षत्रियाँ छह महीने-बरस दिन से ज्यादा पति-विधुरा नहीं रह सकती थीं, वहाँ अब उसे धर्म-विरुद्ध समझा जाने लगा।

'चक्रपाणि' (1200 ई) में स्त्रियों की दशा ओर भी वस्तु मात्र में परिवर्तित होती जा रही थीं। 'राजा का स्थूल शरीर मसनद के सहारे ओठंग गया, और उसने किसी रानी को एक बगल में, किसी को दूसरी बगल में दबाया, किसी की गोद में सिर को रखा और किसी के वक्षस्थल पर भुजाओं को।...रानियों के साथ कामोत्तेजक परिहास हो रहे थे।' (पृ.253)। अतः इस समय स्त्री केवल और केवल काम की तृप्ति करने वाली वस्तु मात्र रह गई थी। 'नग्न सुन्दरियाँ भी मेरे काम को नहीं जगा सकती। तब तो महाराज, आप पूरे योगी हैं। इस योगी के पास की यह सोलह हजार सुन्दरियाँ क्या करेंगी? बाँट दें, महाराज! बहुत से लेने वाले मिल जाएँगे या ब्राह्मणों को गंगा-तट पर जलकुश ले दान कर दें।' (पृ.255)। 'बाबा नूरदीन'

(1300 ई.) चंगेज़ खान के मंगोलों ने बुखारा, समरकंद, बलख आदि इस्लामी दुनिया के शहरों को मुसलमानों की सभ्यता के समस्त केंद्रों को चुन-चुनकर तबाह कर डाला। उन्होंने हमारी औरतों को बिना ऊँचे-नीचे घराने का ख्याल किये आमतौर से दासी बनाया।' (पृ-273)

'सुरैय्या' (1600 ई.) कहानी की सुरैया कमल से प्रेम करती है। दोनों के मध्य के संवाद से एक बात प्रमाणित होती है-मैं साधुनी पर विश्वास नहीं करती थी, जब वह कहती थी हमारे देश में कुल-वधुएँ, कुल-कन्याएँ ऐसे ही स्वच्छन्द, अवगुँठन-रहित घूमती हैं, जैसे पुरुष। और आज इस स्र्वग में रहते हमें दो साल हो गए। कि मिलाओ, प्रिये ! वेनिस् को दिल्ली से। (पृ.267)। क्या सुरैया ! दिल्ली में हम इस तरह स्वच्छन्द विहार कर सकते हैं। बुर्के के बिना ! पालकी के भीतर मूँद-माँदकर जाना पड़ता, प्रिय कमल ! और यहाँ हमें हाथ में हाथ मिलाए चलते देखकर कोई नजर भी उठाकर नहीं देखता। किंतु गुजरात में हमने देखा था अनावृत्तमुखी कुलांगनाओं को सुना था, दक्षिण में भी पर्दा नहीं होता। इससे जान पड़ता है किसी समय हिंद की ललनाएँ भी पर्दे से मुक्त थीं। (पृ.268)

'रेखा भगत' (1800 ई.) कहानी तक आते-आते स्त्रियों की दशा और भी दैन्य हो गई। कहानी में कोलमैन कहता है कि ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के लिए बनाई गई थी, किंतु पीछे इसने लोगों को लूटना शुरू किया। देखते नहीं, जितने साहेब यहाँ आते हैं। छोटे-बड़े की यही हालत है। क्लाइव ने ऐसा ही किया, लेकिन उसको किसी ने नहीं पकड़ा। वारेन हेस्टिंग्स को अपने लोभ में चेत सिंह की रानियों के भूखे मरने तक का भी ख्याल नहीं आया, अवध की बेगमों को उसने कंगाल बनाया। (पृ.278)

इसी कहानी में एक और प्रसंग है जब मौला भोला पंडित से बातचीत में कहता है- 'किंतु, अब फसल हो चाहे न हो, जमींदार को अपना हाड़-चाम बेचकर, बेटी-बहन बेचकर मालगुजारी चुकानी होगी।' (पृ.272)। रेखा की स्त्री को दुहने की बात मालिक करता है-मालिक ने पाँच मुसंड़े प्यादों को हुक्म दिया जाओ, हरामजादे की औरत का दूध दुहकर लाओ।...बेबस रेखा खून-भरी आँखों से देख रहा था, जबकि उन्होंने चिल्लाती हुई मंगरी के स्तन को पकड़ कर गिलास में सचमुच कई धार दूध की मारी। (पृ.290)

'मंगल सिंह' (1857 ई.) कहानी में मंगी और एनी के बीच संवाद के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। मंगी एनी से कहता है- 'हाँ, स्त्रियाँ भी पुरुषों के जुल्मों की मारी है। हमारे यहाँ का सामन्तवाद तो अभी हाल तक सती के नाम पर लाखों औरतों को हर साल जलाता रहा है, और अब भी जिस तरह पर्दों में जकड़बंद जायदाद के अधिकार से वंचित हो वह पुरुषों के जुल्म को सह रही हैं, वह मानवता के लिए कलंक है।' (पृ.299)। इसी के प्रतिउत्तर में एनी कहती है-हमारे यहाँ की स्त्रियों को तुम स्वतंत्र समझते होंगे, क्योंकि हमें पर्दे में बंद नहीं किया जाता !-स्वतंत्र नहीं कहता, एनी ! सिर्फ यही कहता हूँ कि तुम अपनी भारतीय बहनों से बेहतर अवस्था में हो। एनी आगे स्पष्ट करते हुए कहती है- 'गुलामी में बेहतर

और बदतर क्या होता है, मंगी। हमारे लिए पार्लामेंट में वोट का भी अधिकार नहीं। बड़े-बड़े शिक्षणालयों की देहली के भीतर हम पैर नहीं रख सकती। हम कसकर मुट्ठी भर की बना साठ गज के घाँघरे को जमीन में सोहराते सिर्फ पुरुषों के वास्ते तितली बनने के लिए है।' (पृ.299)

'सफ़दर' (1922 ई.) कहानी में सफ़दर और पत्नी सकीना के प्रेम और समर्पण भाव को रेखांकित किया गया है। लेकिन पितृसत्ता की स्त्री के प्रति नकारात्मक सोच को भी अस्वीकार करने के तथ्य को उज्जागर किया गया है। सफ़दर साहेब देश के राजनैतिक माहौल को देख कर नौकरी से त्यागपत्र देकर आज़ादी की लड़ाई में शामिल होना चाहते हैं पर पत्नी सकीना को अत्यधिक प्रेम करने के कारण उससे सहमति लिए बिना, निर्णय लेते हुए सकीना के लिए आराम की जिंदगी छोड़कर जाना चाहते हैं। वे कहते हैं- 'प्यारी सकीना ! मैंने एक बड़ा निश्चय कर डाला है, यद्यपि मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ, कि ऐसे निश्चय करने में मुझे तुम्हें भी बोलने का मौका देना चाहिए था। मैंने ऐसा अपराध क्यों किया, इसे तुम आगे की बात से समझ जाओगी। संक्षेप में वह निश्चय है- मैं अब देश की स्वतंत्रता का सैनिक बनने जा रहा हूँ।' (पृ.324)। लेकिन सकीना भी अपने प्रेम का सच्चा परिचय देते हुए कहती है...मैं तुम्हारे साथ रहूँगी, और जैसे तुमने इस जीवन में पथ-प्रदर्शन किया, वैसे ही आने वाले जीवन में भी पथ-प्रदर्शन करना। (पृ.345)

अतः मनुष्य की आदिम विकास यात्रा से अब तक की यात्रा के परिणामस्वरूप पितृसत्तात्मक सोच ने जब पुरुष के शारीरिक बल को स्त्री की अपेक्षा अधिक समझकर अन्य क्षेत्रों में भी समाज के वर्गों की स्वीकृत तर्क के आधार पर मान्य करवा ली, उसी समय से स्त्री की दशा दारुण होती चली गई। आज के इस उत्तर आधुनिक संदर्भ में भी उच्च से उच्चतर पद, शिक्षा, ज्ञान आदि के क्षेत्र में पुरुष के साथ समानता रखकर भी कई संदर्भों में उसकी स्वीकृत के लिए स्त्री बाट जोहती है। उसे स्वतंत्रता तो मिल रही है पर विचारने की बात है कि आधार तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शर्त ही है ना? इसके अतिरिक्त ऐसे बहुत से संदर्भ रहें है जहाँ स्त्री ने पुरुष का एक साथी, मित्र, सहयोगी, परामर्शदाता आदि के रूप में निर्वहन किया है, परंतु वास्तव में प्रश्न अभी भी यही है कि क्या स्त्री को ईमानदारी से स्वतंत्रता, समानता दी जा रही है या फिर...? अभी और कुछ सदियों तक इंतजार करना होगा?

असिस्टेंट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, विजयवाडा

हमारे सामने जो मार्ग है उसका कितना ही भाग बीत चुका है, कुछ हमारे सामने है और बहुत अधिक आगे आने वाला है। बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना कोई प्रगति नहीं, प्रतिगति-पीछे लौटना होगा। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है। - **राहुल सांकृत्यायन**

मीडिया

साहित्य और पत्रकारिता

- अमन कुमार त्यागी

पत्रकारिता और साहित्य को समझने के लिए प्रख्यात शायर अकबर इलाहाबादी की साहित्यिक पँक्तियाँ ही पर्याप्त हैं- 'खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो,/ जब तोप मुकाबिल हो तो अख़बार निकालो'। पत्रकारिता साहित्य की भाँति लोक-मंगल एवं जनहित के लिए काम करती है। वह पाठकों में वैचारिक उत्तेजना जगाने का काम करती है। पीड़ितों, वंचितों के दुख-दर्दों में आगे बढ़कर उनका सहायक बनना पत्रकारिता की प्रकृति है। भारतीय संदर्भों में साहित्य और पत्रकारिता लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित है। वह समाज से कुछ लेकर उसे बहुत अधिक देना चाहती है। पत्रकारिता का क्षेत्र एवं परिधि व्यापक है। 'समाचार पत्र सिर्फ खबरें ही नहीं देता है, उनका महत्त्व बताता है और लोगों को शिक्षित करता है। इसीलिए उसे लोकगुरु कहा गया है। 'जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रही हलचलों, संभावनाओं पर विचार कर एक नई दिशा देने का काम पत्रकारिता के क्षेत्र में आ जाता है। पत्रकारिता जीवन के प्रत्येक पहलू पर नजर रखती है। इन अर्थों में उसका क्षेत्र व्यापक है। एक पत्रकार के शब्दों में समाचार पत्र जनता की संसद है, जिसका अधिवेशन सदैव चलता रहता है। 'सजगता और गम्भीरता पत्रकार में सदैव रहनी चाहिए। तभी तो 'एक वरिष्ठ पत्रकार ने सही लिखा है कि संवाददाता के कान में यह बात भर दी जानी चाहिए कि समाचार अति आग्नेय पदार्थ है जिसका असावधानीपूर्वक या दूषित इरादे से प्रयोग करना विध्वंसकारी हो सकता है।'

पत्रकारिता तमाम जनसमस्याओं एवं सवालों से जुड़ी होती है, समस्याओं को प्रशासन के सम्मुख प्रस्तुत कर उस पर बहस को प्रोत्साहित करती है। समाज जीवन के हर क्षेत्र में आज पत्रकारिता की महत्ता स्वीकारी जा रही है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, विज्ञान, कला सब क्षेत्र पत्रकारिता के दायरे में हैं। इन संदर्भों में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आर्थिक पत्रकारिता का महत्त्व खासा बढ़ गया है। नई आर्थिक नीतियों के प्रभावों तथा जीवन में कारोबारी दुनिया एवं शेयर मार्केट के बढ़ते हस्तक्षेप ने इसका महत्त्व बढ़ा दिया है। तमाम क्षेत्रीय-प्रांतीय अखबार आज अपने आँचलिक संस्करण निकाल रहे हैं, पर उनमें भी राजनीतिक खबरों, बयानों का बोलबाला रहता है। इसके बाद भी आँचलिक समाचारों के चलते पत्रकारिता का क्षेत्र व्यापक हुआ है और उसकी महत्ता बढ़ी है।

पत्रकारिता के प्रारंभिक दौर में घटना को यथातथ्य प्रस्तुत करना ही पर्याप्त माना जाता था। परिवर्तित परिस्थितियों में पाठक घटनाओं के मात्र प्रस्तुतीकरण से संतुष्ट नहीं होता। वह और कुछ भी जानना चाहता है। इसी 'और' की संतुष्टि के लिए आज संवाददाता घटना की पृष्ठभूमि और कारणों की भी खोज करता है। पृष्ठभूमि के बाद वह समाचार का विश्लेषण भी करता है। इस विश्लेषणपरकता के कारण पाठक को घटना से जुड़े विविध मुद्दों का भी पता चल जाता है। पत्रकार का मुख्य कार्य अपने

पाठकों को तथ्यों की सूचना देना है। जहाँ संभव हो वहाँ निष्कर्ष भी दिया जा सकता है। अपराध तथा राजनैतिक संवाददाताओं का यह मुख्य कार्य है। एक और मुख्य दायित्व प्रसार का है। आर्थिक-सामाजिक जीवन के बारे में तथ्यों का प्रस्तुतीकरण ही पर्याप्त नहीं वरन् उनका प्रसार भी आवश्यक है। गंभीर विकासात्मक समस्याओं से पाठकों को अवगत कराना भी आवश्यक है। पाठक को सोचने के लिए विवश कर पत्रकार का लेखन संभावित समाधानों की ओर भी संकेत करता है। विकासात्मक लेखन में शोध का भी पर्याप्त महत्व है। क्योंकि 'यह कड़वा सच है कि जिस देश की जनता को सही और विश्वसनीय सूचनाएँ नहीं मिल पातीं, उस जनता में हमेशा असुरक्षा की भावना घर कर जाती है। वास्तव में ऐसे देश के लोगों को पूरी तरह आजाद ही नहीं माना जा सकता है।'

पत्रकार को विभन्न भागों में विभक्त किया जा सकता है- उद्योग, कृषि, शिक्षा, आर्थिक गतिविधियाँ, नीति और योजना, परिवहन, संचार, ऊर्जा, श्रम, रोजगार, विज्ञान और तकनीक, रक्षा, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य, शहरी एवं ग्रामीण विकास, निर्माण और आवास, पर्यावरण और प्रदूषण, राजनीति, विदेश, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, खेल, फिल्म आदि। पत्रकारिता का महत्त्व छिपे तथ्यों को उजागर करने में स्वीकारा गया है। वह तमाम क्षेत्र की विशिष्ट सूचनाएँ जनता को बताती है। जब जहाँ कोई व्यक्ति या अधिकारी कोई तथ्य छिपाना चाहता हो अथवा कोई तथ्य अनुद्घाटित हो, वहीं अन्वेषणात्मक पत्रकारिता प्रारंभ हो जाती है। वर्तमान परिवेश में जहाँ प्रेस का दायरा विस्तृत हुआ है, वहीं उसकी महत्ता भी बढ़ी है। वह लोगों के होने और जीने में सहायक बन गई है।

जिस प्रकार साहित्य समाज की बात करता दिखाई देता है, उसी प्रकार पत्रकारिता भी समाज की बात करती प्रतीत होती है। इसी कारण साहित्य और पत्रकारिता में समानता पाई जाती है। 'वस्तुतः साहित्यकार एवं पत्रकार परस्पराश्रित हैं। दोनों कलम के धनी होते हैं। इनकी कलम में अद्भुत शक्ति होती है। इनकी कलम जहाँ सामाजिक परिवर्तन की सशक्त आधारभूमि तैयार कर सकने में सक्षम है, वहीं शक्तिशाली सत्ताओं को भी बदल सकने में समर्थ है। दोनों अपने विकास और समृद्धि के लिए भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। पत्रकारिता, साहित्य को जन-जन तक पहुँचाती है तो साहित्य पत्रकारिता को संवेदनशील बनाकर प्रभावी बनाता है।' 'हिंदी के चोटी के लेखक और कवि पहले पत्रकार रहे हैं और उनके साहित्यकार होने की पहचान बाद में हुई है।' 'साहित्य-सृजन तथा पत्रकारिता में अटूट संबंध है। पत्रकारिता तो एक तरह से साहित्य-सम्वर्द्धन में तेजी लाती है, नई प्रतिभाओं को उभरने का अवसर देती है तथा गुण-दोष और सुझावों को सामने रखती है।' विद्वान साहित्यकार बर्नाड शॉ का मानना है कि 'कुशल पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं होता।' इस प्रकार माना जा सकता है कि 'सर्वोत्तम पत्रकारिता साहित्य है और सर्वोत्तम साहित्य पत्रकारिता है।'

पण्डित कमलापति त्रिपाठी के उद्धरण में तो साहित्य की बात जोरदार शब्दों में आई है - कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, आलोचक के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्य के लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगत को प्रकाश में लाने का पथ एक साथ ही उपस्थित करने में सिवा पत्रकारिता के आज कौन समर्थ है? साहित्य के छोटे-बड़े प्रवाहों को प्रतिबिम्बित करने में पत्रकारिता के समान दूसरा कौन सफल होता है।' 'अगर साहित्य का काम संसार को ठीक-ठीक देखना और परखना है तो पत्रकारिता का भी पहला काम यही बताया गया है। इस उद्देश्य की बात तो छोड़ दीजिए, साधारणतः हम जो कुछ देखते हैं उसी से यह महसूस हो जाता है कि इन दोनों का संबंध क्या है, कितना है। हमें पुस्तकों के रूप में बहुत सी ऐसी पाठ्य सामग्रियाँ मिलेंगी, जो कभी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी थीं।' पत्रकारिता हो अथवा साहित्य दोनों के लिए यदि 'लिखना है तो भाषा शैली होनी ही चाहिए।' यदि साहित्य के प्रमुख तत्वों- भाव, कल्पना, बुद्धि, शैली को सम्मुख रखकर पत्रकारिता और साहित्य में समानता की बात करें तो पाएँगे कि दोनो में बहुत अधिक अंतर नहीं है।

'साहित्य का सर्वप्रमुख तत्व 'भाव' है - यही उसकी आत्मा है।' यदि इस तथ्य को स्वीकार किया गया है तो यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि 'भाव' ही के कारण पत्रकारिता का जन्म हुआ है और पत्रकारिता भावों को पुष्ट करने के लिए तथ्यों को तलाशती है। साहित्य का दूसरा तत्व 'कल्पना' है। साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पनाशक्ति के प्रयोग के द्वारा ही संपन्न होता है। एक साधारण सी साधारण घटना को भी कवि कल्पना के रंग में रंगकर ऐसा भव्य रूप प्रदान कर देता है कि वह हमारे हृदय को एकाएक आकर्षित कर लेता है। हालाँकि पत्रकारिता में कल्पना के लिए कोई विशेष स्थान नहीं है। 'साहित्य - जगत का सम्राट 'भाव' और 'कल्पना उसकी दासी है।' अर्थात् भावशून्य कल्पना का साहित्य में कोई स्थान नहीं होना चाहिए, ताकि रचना की साहित्यिकता नष्ट होने से बच सके। पत्रकारिता में

रोजगार कहाँ है

- कमलेश झा

जनता पूछे अब एक ही प्रश्न
किस संदूक में किया रोजगार बंद।
खाने को अब रोटी नहीं है
कब खोलोगे वो संदूक बंद।।

टाल मटोल और सुस्ती लाकर
अब खड़ा किया दोराहे पर।
महामारी और जठराग्नि मार ने
अब ला खड़ा किया चौराहे पर।।

तुम बैठे आलीशान महल में
जठराग्नि का न तुमको अनुमान।
दावाग्नि से तेज सुलगता
इसका तुमको कैसे हो अनुमान ??

खाक करेगा मेरे तन को
स्वाहा होगा तेरा भी साम्राज्य।
फिर तेरी भी बारी आएगी
जला देगा ये हमारी पेट की आग।।

मुख्य 'तथ्य' होते हैं और कल्पना तथ्यों तक पहुँचने का मार्ग तलाशती है। यही तथ्य किसी साहित्यकार में भावोत्पादन करते हैं, जिन्हें वह कल्पना के घोड़े पर चढ़कर साहित्य की रचना करता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य और पत्रकारिता में कल्पना को नाममात्र का स्थान प्राप्त है।

साहित्य का तीसरा तत्व 'बुद्धि' है। बुद्धि का संबंध तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों से है। साहित्य में किसी न किसी मात्रा में तथ्यों, विचारों और सिद्धांतों का भी समावेश किया जाता है। पत्रकारिता में बुद्धि का स्थान महत्वपूर्ण है। सभी तथ्य बुद्धिबल पर ही जुटाए जाते हैं, तभी समाचार में सत्यता बनी रहती है। साहित्य में कल्पना से काम चल सकता है मगर समाचार में बुद्धिबल पर जुटाए गए तथ्य और इन तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत घटना का ब्यौरा सत्य को उद्घाटित करता है।

साहित्य का चौथा तत्व 'शैली' है । कवि या साहित्यकार जिस भाषा, जिस रूप और जिस ढंग से अपने भावों, विचारों या इतिवृत्त को व्यक्त करता है, वही शैली है। शैली के अन्तर्गत भाषा, शब्द-चयन, अलंकारों का प्रयोग, छंदों का उपयोग, काव्यरूप आदि का समावेश किया जाता है। काव्य के प्रारंभिक तीन तत्व यदि उसके प्राण हैं तो शैली उसका शरीर है। ठीक यही बात पत्रकारिता के लिए भी कही जा सकती है। पत्रकारिता की भी अपनी शैली होती है। पत्रकारिता में सबसे महत्वपूर्ण बात सबसे पहले कही जाती है और सबसे कम महत्वपूर्ण बात सबसे बाद में। ऐसा इसलिए नहीं है कि पत्रकारिता साहित्य से अलग होनी चाहिए। बल्कि इसलिए है कि साहित्य की अन्य विधाओं की रचना धैर्यपूर्वक रची जाती है ताकि कालजयी बन सके जबकि समाचार की रचना शीघ्रता में की जाती है ताकि आज का समाचार आज ही पाठकों तक पहुँच सके और पाठक उससे कुछ जान सकें।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो 'सामाजिक प्राणी के रूप में पत्रकारों का तथा साहित्यकारों का मूल उद्देश्य समान ही जान पड़ता है।' साहित्य और

खेल रहे तुम अपनों से
जिसने पहनाया तुमको ताज।
रोजगार बिना वो घूम रहा है
जीने को न उसे कोई आधार।।

झुंड बना कर तुम सियार का
झूठ मूठ का करते दोषारोपण।
फिर मिल बाँट कर पान करते हो
हम जनता का शोणित कण।।

अब भी न तुम जग पाए तो
होगा सबका सत्यानाश।
आह लगेगी इन भूखों का
होगा तेरा सत्यानाश।।

हुंकार भरेंगे भूखों की टोली
छिपने का न होगा कोई ठौर।
रेगिस्तान सी तपती धरती
लीलने तुमको होगी मजबूर।।

E 539/Gali No 14,Shiv Durgavihar
Faridabad, Haryana - 121010

पत्रकारिता के बीच एक अटूट रिश्ता रहा है। एक जमाना वह था जब इन दोनों को एक-दूसरे का पर्याय समझा जाता था। ज्यादातर पत्रकार साहित्यकार थे और ज्यादातर साहित्यकार पत्रकार। 'हिंदी पत्रकारिता में विभिन्न सम्पादकों की उपलब्धियों का एक विशिष्ट पक्ष है- गद्य की विविध विधाओं के विकास एवं उन्नयन में संपादकों द्वारा महत् भूमिका का निर्वाह। इसके अतिरिक्त भाषागत् विकास एवं विस्तार में हिंदी संपादकों की लेखन शैली ने सशक्त पीठिका निर्मित की है। सुप्रसिद्ध दैनिक 'आज' के संपादक पं.बाबूराव विष्णु पराड़कर ने गुजराती, बंगला, मराठी तथा अन्य स्रोतों से दो सौ नए शब्दों का हिंदी में प्रचलन कराया है।'

पत्रकारिता में पराड़कर जी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है किंतु क्या उन्हें विशुद्ध पत्रकार ही मानना चाहिए? साहित्य में भी पराड़कर जी ने कम योगदान नहीं किया तभी तो 'पत्रकार पराड़कर जी भाषा के भी आचार्य मान लिए गए थे। व्याकरण संबंधी उनकी मान्यताएँ भी हिंदी वालों द्वारा सादर स्वीकार कर ली गईं। वह साहित्य पर भी प्रकाश डालते रहते थे और साहित्यकारों की समस्याओं पर बराबर ध्यान रखते थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का उनका आन्दोलन हिंदी-साहित्य की एक बहुत बड़ी सेवा थी। पत्रकार को, पत्र के सम्पादक को- साहित्यकारों का प्रेरक प्रोत्साहक और निर्माता होना चाहिए। इस उक्ति को पराड़करजी ने सिद्ध कर दिया। 'शिमला साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित होकर उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता के संबंध को ही पुष्ट किया।'

गर्दे जी को भी पत्रकार होने के बावजूद हिंदी साहित्यकारों में बड़ा स्थान मिला है। 'उनका साहित्य का अध्ययन बड़ा गंभीर था। उन्हें भी अन्य अनेक पत्रकारों की तरह हिंदी का निर्माता होने का श्रेय प्राप्त था। बाबू श्यामसुंदर दास ने उन्हें हिंदी का निर्माता माना।' 'भारतेंदु जी यह मानकर चलते रहे कि समाज के विचारों और साहित्य की संवाहिका का ही नाम पत्रकारिता है, जो समाज और साहित्य के इतिहास में अपना एक स्थान तो बना ही लेती है, उनका निर्माण भी करती है।'

'जो काम पुस्तकीय साहित्य से नहीं हो सकता था, उसे पत्र-पत्रिका के साहित्य ने किया और वह हमारा स्थायी धन बन गया।' दैनिक से संबद्ध साहित्य - विशेषांक या परिशिष्ट में सभी सामग्रियाँ प्रकाशित होती हैं, जो साहित्य की विभिन्न विधाओं में आती हैं- कहानी, कविता, धारावाहिक उपन्यास, एकांकी, नाटक, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि को प्रकाशित किया जाता रहता है। हालांकि कुछ विद्वानों ने दैनिक पत्रों में साहित्य को भरपूर स्थान मिलने के बावजूद पत्रकारिता और साहित्य को भिन्न स्थापित करने का प्रयास किया है, 'जो कुछ भी हो, दैनिक पत्रों को साहित्य से सर्वथा अलग नहीं रखा जा सका।'

साहित्यकार की पहली सीढ़ी के विषय में लेखक हेरम्ब मिश्र का मानना है कि 'और किसी दृष्टि से नहीं तो इस दृष्टि से तो पत्रकारिता का साहित्यिक महत्व है ही कि उसी के माध्यम से छोटे-बड़े साहित्यकार प्रकाश में आए हैं, और आते रहेंगे। यह तो स्पष्ट ही है कि बड़ा साहित्यकार एकाएक प्रकाश

में नहीं आ जाता, न ग्रंथ-रचना से ही उसका विज्ञापन होता है। पहले वह पत्र-पत्रिकाओं में अपनी फुटकर रचनाओं के प्रकाशन से ही लोगों के सामने आता है।' यह पत्रकारिता और साहित्य में समानता की ही तो बात है कि 'अम्बिका प्रसाद वाजपेयी पत्रकार ही तो थे और उनका अधिकांश पत्रकारिता काल समाचार पत्रों के संपादन में ही बीता। किंतु वह साहित्यकार भी थे। तभी तो 1939 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के 26 वें अधिवेशन में, जो काशी में हुआ था, वह सभापति-पद पर सुशोभित किए गए। 'परशियन इन्फ्लुएन्स ऑन हिंदी' नामक ग्रंथ, जिसका हिंदी अनुवाद हिंदी पर फारसी का प्रभाव नाम से हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हुआ, हिंदी साहित्य का ही तो एक देन है। उन्होंने अभिनव हिंदी व्याकरण' भी रचा। क्या यह कोई पत्रकारिता की ही चीज थी? इसी प्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा माखनलाल चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों से मान्यता मिली।

साईं एंक्लेव, धनौरा देवता, नजीबाबाद - 246763

गतिविधियाँ

74 वाँ गणतंत्र दिवास समारोह संपन्न

हैदराबाद (26 जनवरी, 2023) हैदराबाद स्थित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना में 74 वाँ गणतंत्र दिवस समारोह संपन्न हुआ। आंध्र सभा के अध्यक्ष पी. ओबय्या ने ध्वजारोहण किया और कहा कि सभा द्वारा संचालित परीक्षाओं में बैठने वाले परीक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। द्वितीय उपाध्यक्ष एल. मधुसूदन ने गणतंत्र दिवस की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डाला तो प्रबंध निधिपालक षेक मोहम्मद खासिम ने गणतंत्र दिवस मनाने के उद्देश्य को स्पष्ट किया।

विजयवाड़ा में गणतंत्र दिवस समारोह

परीक्षापयोगी

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

हिंदी साहित्य का इतिहास

1. 'उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिंदी है'- यह किसका मत है?
   उत्तर : चंद्रधर शर्मा गुलेरी
2. आदिकाल के प्रथम कवि कौन हैं?
   उत्तर : सरहपाद
3. राहुल सांकृत्यायन ने हिंदी के प्रथम कवि किसे माना?
   उत्तर : सरहपा
4. 'पउम चरिउ' के रचनाकार कौन हैं?
   उत्तर : स्वयंभू
5. 'आल्हाखंड' के रचयिता कौन हैं?
   उत्तर : जगनिक
6. आदिकाल को 'वीरगाथा काल' नाम किसने दिया?
   उत्तर : रामचंद्र शुक्ल
7. 'चारण काल' का दूसरा नाम क्या है?
   उत्तर : आदिकाल
8. आदिकाल को 'बीजवपन काल' किसने माना?
   उत्तर : महावीर प्रसाद द्विवेदी
9. प्रथम काल का नामकरण 'आदिकाल' किसने किया?
   उत्तर : हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर इसे आदिकाल कहा।
10. हिंदी साहित्य के इतिहास को 'संधि काल एवं चारण काल' किसने कहा?
    उत्तर : डॉ. रामकुमार वर्मा
11. आचार्य शुक्ल ने किस आधार पर प्रथम काल को वीरगाथा काल कहा?
    उत्तर : ऐतिहासिक सामाजिक वास्तविकता के आधार पर
12. ऐतिहासिकता के आधार पर ग्रियर्सन ने आदिकाल को क्या कहा?
    उत्तर : चारण काल

13. मिश्रबंधुओं ने आदिकाल को क्या नाम दिया?
उत्तर : प्रारंभिक काल

14. 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचनाकार कौन हैं?
उत्तर : शालिभद्र सूरी

15. 'मैथिल कोकिल' कौन हैं?
उत्तर : विद्यापति

16. हिंदी साहित्य के पहले इतिहासकार कौन हैं?
उत्तर : गार्सां द तासी। 'इस्त्वार द ल लितरेत्युर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' नाम से उन्होंने हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रेंच में लिखा है।

17. हिंदी में लिखा गया हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास का नाम बताइए।
उत्तर : शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज'

18. अंग्रेजी में लिखा गया हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास का नाम बताइए।
उत्तर : सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान'

19. चौरासी सिद्धों में आदि सिद्ध कौन हैं?
उत्तर : सरहपा

20. 'खुमान रासो' के रचनाकार कौन हैं?
उत्तर : दलपति विजय

21. हिंदी काव्य में बारहमासा वर्णन सबसे पहले कहाँ मिलता है?
उत्तर : बीसलदेव रासो

संकलन : गुर्रमकोंडा नीरजा

श्रद्धांजलि

वरिष्ठ हिंदी प्रचारक तथा निधिपालक मंडल के सदस्य श्री. एम.राधाकृष्णय्या (कलिकिरि) का आकस्मिक निधन 08.02.2023 को हुआ। सभा परिवार भगवान से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को चिरशांति और शोक संतप्त परिवार को सहनशक्ति प्रदान करें।

गतिविधियाँ

'स्वामी विवेकानंद के विचारों में युवा' विषयक व्याख्यान संपन्न

हैदराबाद (4 फरवरी, 2023)

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद के पी.जी. केंद्र एवं शिक्षा महाविद्यालय द्वारा शनिवार 04 फरवरी, 2023 को स्वामी विवेकानंद के जन्मदिन के उपलक्ष्य में 'स्वामी विवेकानंद के विचारों में युवा' विषयक विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। विवेक वर्धिनी महाविद्यालय, हैदराबाद की पूर्व प्राचार्य डॉ. रेखा शर्मा बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित रही।

डॉ. रेखा शर्मा ने अपने वक्तव्य में नरेंद्र दत्त से स्वामी विवेकानंद बनने तक की जीवन यात्रा पर सार गर्भित व्याख्यान प्रस्तुत किया। शिकागो परिषद के माध्यम से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का संपूर्ण विश्व भर प्रचार प्रसार करने वाले सच्चे भारतीय शुभचिंतक एवं अध्यात्म पुरूष के रूप में विवेकानंद को उन्होंने स्थापित किया।

सचिव (प्रभारी) एवं संपर्क अधिकारी ए. जानकी ने समारोह की अध्यक्षता की। अपने वक्तव्य में उन्होंने विवेकानंद के विचारों का वर्तमान समय में युवाओं को अपनाने की आवश्यकता पर बल दिया क्योंकि जीवन में आगे बढ़ने हेतु सतत प्रयत्नशील होना चाहिए। उन्होंने कार्यक्रम की सफ़लता हेतु शुभकामनाएँ भी दी।

समारोह में विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित प्रबंध निधिपालक शेख मोहम्मद खासिम विवेकानंद के व्यक्तित्व और विचारों पर प्रकाश डाला। साथ ही इस बात पर बल दिया कि विवेकानंद की तरह हर व्यक्ति को जिज्ञासू बनना चाहिए। बीएड के प्राचार्य डॉ. सी. एन. मुगुटकर ने विकेकानंद के दार्शनिक सिद्धांतों की चर्चा की उन्होंने शिक्षा संबंधी उनके विचारों पर सम्यक रूप से प्रकाश डाला।

कार्यक्रम का प्रारंभ दीप प्रज्वलन से हुआ। सरस्वती वंदना डॉ. शैलेषा नंदुरकर ने की। अतिथियों का स्वागत पी.जी. विभागाध्यक्ष प्रो. संजय एल. मादार ने किया। कार्याक्रम का संचालन डॉ.साहिराबानो बी. बोरगल ने और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. शेख जुबेर अहमद ने किया। समारोह में पी.जी एवं शिक्षा महाविद्यालय के प्राध्यापक, विद्यार्थी, शोधार्थी तथा सभा के प्रबंधक कर्मचारी एवं कार्याकर्ता उपस्थित रहे। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

"जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नहीं होगी।
किसीसे मेहरबानी माँगना अपनी आजादी को बेचना है।
अहिंसा के बिना सत्य की खोज असंभव है।
नम्रता के बिना शांति नहीं मिल सकती।"

- महात्मा गांधी

हिंदी प्रेमी मंडली, नाजरपेट, तेनाली का संदर्शन : 21 जनवरी, 2023

महात्मा गांधी स्कूल : विजयवाडा : 21 जनवरी, 2023

सूचना प्रचार केंद्र, एलूरू का निरीक्षण
22 जनवरी, 2023

राष्ट्रभाषा प्रवीण परीक्षा में उत्तीर्ण
70 वर्षीय बंडि मैसूरा रेड्डी (कडपा) का अभिनंदन : 5 फरवरी, 2023

ISSN 2582-0885

BOOK POST

SRAVANTHI

RNI3108/58

February 2023

Registered News Paper

To

.....

.....

.....

If not delivered, please return to:

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha – Andhra Pradesh & Telangana

(Provincial Branch of Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

P.B. No.23, Khairatabad, Hyderabad - 500 004.

व्यक्ति अपने विचारों से निर्मित प्राणी है। वह जो सोचता है वही बन जाता है।

- महात्मा गांधी

Edited, Printed and Published by G. Selvarajan on behalf of the D.B. Hindi Prachar Sabha - Andhra Pradesh & Telangana Khairatabad, Hyderabad - 500 004 and Printed at Hindi Prachar Press, T. Nagar, Chennai - 600 017.